सिद्धयोग

2016

संस्थापक : योगयोगेश्वर
अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

एक प्रति : रू. 20
द्विवार्षिक : रू. 360

वर्ष : 49 ; अंक : 4
जुलाई 2016

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र

अमृत कण

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्व प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विता।।

(गीता 10/8)

मैं (भगवान) ही सबका उत्पत्ति–स्थान हूँ और समस्त जगत् की मुझ (भगवान) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने (सब कर्मों द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन सेवन करते हैं।

❋ ❋ ❋

रुचं नोधेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसू नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।।

(यजुर्वेद)

जैसे परमात्मा पक्षपात् न करके सभी वर्ग के प्राणियों से समान रूप से प्रीति करता है, वैसे ही हम सब मिलकर, ब्रह्मवेत्ता विद्वान, राजकीय व्यक्ति, व्यवसायी और सेवायें प्रदान करने वाले सभी नागरिक परस्पर रुचि और प्रीति पूर्ण व्यवहार करें।

❋ ❋ ❋

तदात्वे चानुबन्धे वा यस्य स्यादशुभं फलम्।
कर्मणस्तन्न कर्तव्यमेतद् बुद्धिमतां मतम्।।

(चरक संहिता)

कार्य करते समय, तत्काल या भविष्य में, जिसका फल अशुभ अर्थात् हानिकारक हो, इसका विचार करके, ऐसे काम कदापि नहीं करना चाहिये। यह बुद्धिमानी का सिद्धान्त है।

❋ ❋ ❋

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो दानं भारः क्रिया बिना।।

(हितोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रिय नहीं है उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान बोझ के समान है जैसे कुरुप स्त्री के पास आभूषण।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 49
अंक 4

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विपदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

जुलाई
2016

इन्द्रदेव स्तुति

सहस्त्रं त इन्द्रोतयो न सहस्त्रमिषों
हरिवो गूर्ततमाः। सहस्त्रं रायो मादयध्यै
सहस्त्रिण उप न सन्तु वाजाः।।

भावार्थ

हे अश्व युक्त इन्द्रदेव ! आपके हजारों रक्षा साधन हमारे संरक्षण निमित्त हैं। हे इन्द्रदेव ! आप हजारों प्रकार के प्रशंसनीय अन्न, आनन्दित करने वाले धन तथा असीमित बल हमें प्रदान करें।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

□□□ □□□

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – *योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज* 3
2. सम्पादकीय 7
3. श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा– *डॉ. विजय सिंह* 10
4. गुरु जी ने यम दूतों को लताड़ा– *जगदीश राए बंसल* 14
5. सद्गुरु सत्ता में नम्रता– *कृष्ण कुमार पाण्डेय* 17
6. श्री सद्गुरुदेव जी कृपा–2– *श्याम मनोहर श्रीवास्तव* 20
7. क्या योगासन वैज्ञानिक पद्धति है ?– *श्री विजय दीक्षित* 22
8. आश्रम समाचार– *श्री सिद्धगुफा सवाई पर विशेष योग शिविर सम्पन्न* 25
9. योग सिद्ध आश्रम पुरानी मण्डी में विशाल योग शिविर– *हेमराज चोपड़ा* 26
10. योगिनी आनन्दमयी माँ 29
11. गुरुभक्ति– *आचार्य ब्रह्मचारी बृजमोहन वाशिष्ठ जी* 35
12. षट् दर्शनों में योग का महत्व– *डॉ. ऋषिराम शर्मा* 36

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन	: रु.1000.00

योग और परकाय प्रवेश

योगीराज अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

परकाय प्रवेश के विषय में बहुत सी किंवदन्तियाँ हैं। परकाय प्रवेश क्या वस्तु है? किन साधनों से यह क्रिया किस प्रकार प्राप्त की जाती है, इस बात को हर व्यक्ति नहीं जानता। किन्तु प्राचीन इतिहास और अब भी अनुभवी सन्तों के चरित्र यह भली प्रकार सिद्ध करते हैं कि समाधि सिद्ध योगियों ने स्थान–स्थान पर परकाय प्रवेश किये और उन–उन शरीरों में जाकर विभिन्न प्रकार की क्रियायें एवं रहस्यों को समझा। कौन नहीं जानता जगद्गुरु आदि शंकराचार्य का शास्त्रार्थ श्रीनगर में मण्डन मिश्र के साथ हुआ। श्री शंकराचार्य जी ने मण्डन मिश्र को परास्त कर दिया। मध्यस्था मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी विद्याधरी थीं। शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पहले शास्त्रार्थ की नियमावली बना ली गयी थी। उसमें निश्चय हुआ था कि शास्त्रार्थ में जो भी हार जायेगा वह अपने प्रतिवादी का शिष्य हो जायेगा, और उसी के आश्रम को स्वीकार कर लेगा। परिणाम हुआ भी इसी प्रकार का। शास्त्रार्थ में श्री शंकराचार्य जी ने मण्डन मिश्र जी को परास्त कर दिया। मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी विद्याधरी ने निर्णय दे दिया कि पराजय मण्डन मिश्र की हुई है। श्री शंकराचार्य जी जीत गये हैं। इसके परिणामस्वरूप मण्डन मिश्र का सन्यास ग्रहण करना भी निश्चित हो गया। किन्तु परम सौभाग्य शालिनी देवी विद्याधरी ने देखा कि उसका पति शास्त्रार्थ में पराजित होकर सन्यास लेने वाला है एवं उसका यह गृहस्थ सम्बन्ध सदा के लिए समाप्त होने जा रहा है। देवी को एक युक्ति सूझी और उसने श्री शंकराचार्य जी से कहा–महात्मन्! अभी आप मण्डन मिश्र को परास्त नहीं कर पाए हैं। आधा मण्डन मिश्र मैं आपके सामने मौजूद हूँ। यदि शास्त्रार्थ में आप मुझे भी जीत लेंगे तभी मण्डन मिश्र की पराजय समझी जायेगी। श्री शंकराचार्य जी ने धर्म परायणा देवी की इस युक्ति को यथार्थ माना और देवी विद्याधरी के साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हो गये। देवी विद्याधरी ने कामशास्त्र से सम्बन्धित वाद प्रस्तुत किया। उसकी विद्वता और पांडित्य पूर्ण तर्कों को जानकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्री शंकराचार्य जी को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और वे अपने आपको पराजित–सा समझने लगे। अपनी होती हुई घोर पराजय को देखकर ब्रह्मचारी शंकर ने विद्याधरी से छः महीने

का अवकाश माँगा, विद्याधरी ने वह अवकाश श्री शंकराचार्य को दे दिया और शंकराचार्य जी ने विद्याधरी के गूढ़ प्रश्नों का समाधान प्राप्त करने के लिए एक राजा के मृत शरीर में प्रवेश किया और उस शरीर के द्वारा काम–कला के सभी रहस्यों को सीख लिया। उन दिनों शंकराचार्य जी का वह व्यक्त शरीर उनके शिष्यों ने श्री अमरनाथ जी की एक गुफा में तेल के कड़ाहे में डालकर सम्भाल कर रखा। श्री शंकराचार्य जी ने अपने शिष्यों को यह संकेत दे दिया था कि मैं इतने महीने के बाद पुनः इसी शरीर में प्रवेश करूँगा। तब इसे तेल के कड़ाहे से निकाल कर बाहर रख देना जिससे मैं इसमें भली प्रकार प्रवेश कर सकूँ। वैसा ही हुआ भी। और विद्याधरी से मिलकर उसके कूट (रहस्यमय) प्रश्नों का जवाब दिया। बाद में मण्डन मिश्र और उसकी धर्मपत्नी विद्याधरी को परास्त करके विजय प्राप्त की। यह सब परिणाम श्री शंकराचार्य जी के परकाय प्रवेश के द्वारा हुआ। परकाय प्रवेश के अन्य भी इस प्रकार के सैंकड़ों उदाहरण हैं जो अनुभवी सन्तों ने करके दिखलाए।

भारतवर्ष में समय–समय पर इस प्रकार के सन्तों का प्रादुर्भाव होता रहता है जो अपने दिव्य जीवन से योग सिद्धान्तों को प्रकट करते रहते हैं। आज से लगभग 40 वर्ष पहले की बात है, पंजाब के समाचार पत्रों में एक घटना श्रीनगर (काश्मीर) की बहुत ही विशद् रूप से प्रकाशित हुई थी। श्रीनगर की किसी वनस्थली में एक वृद्ध महात्मा निवास करते थे। उनके शिष्य एक वकील थे। वकील से महात्मा ने कहा कि भाई शरीर जर्जरीभूत हो चुका है। इसमें खान–पान और चलने–फिरने की योग्यता नहीं रह गयी है। इस शरीर का परिवर्तन बहुत आवश्यक है। जन्म लेंगे तो जन्म–मरण के महादुःख को भोगना पड़ेगा। इसलिए अच्छा यही है कि हम किसी युवा के शरीर में प्रवेश कर जाएं और उस शरीर को लेकर के हम अपनी साधनाओं में लगे रहें। किन्तु किसी हिन्दू का शरीर तो हमें मिलेगा नहीं क्योंकि वे लोग देहान्त के बाद शरीर को जला देते हैं। मुसलमान का शरीर मिलेगा क्योंकि इन लोगों के शरीर दफनाए जाते हैं। दो एक दिन में ही किसी मुसलमान युवा लड़के की मृत्यु हो गयी। वकील ने महात्मा जी को सूचना दी। लड़का पवित्र विचार का था, शुद्ध आहार–विहार का था। महात्मा जी ने उसी के शरीर को अपना बनाने का निश्चय कर लिया और अपने शिष्य वकील को पूरी–पूरी बात समझा दी। आज ही रात उस लड़के के शरीर को तुम निकलवा लेना मैं और उस लड़के का शरीर पास–पास लेट जायेंगे। थोड़ी देर में दोनों शरीरों में स्पन्दन शुरू हो जायेगा। कुछ देर बाद शरीरों का स्पन्दन बन्द हो जावेगा। तुम अमुक आहार उसको खाने को दे देना और मेरे शरीर को लड़के के शरीर के स्थान में दबा देना। तुम घबराना नहीं लड़के के शरीर में स्वयं मैं ही होऊँगा। तुम चुपचाप

अपने घर में लिवा लाना एवं छः या सात रोज तक मेरे उस लड़के वाले शरीर की अमुक–अमुक औषधियों से मालिश करना एवं अमुक वस्तु खाने को देना। उसके एक सप्ताह बाद मैं कहीं भी चला जाऊँगा। वकील ने उसी प्रकार से सेवा की। लगभग एक सप्ताह या दस रोज बाद महात्मा जी उस लड़के वाले शरीर को लेकर कहीं चले गए। अकस्मात् महात्मा जी अमृतसर जा निकले। अमृतसर में मुस्लिम लड़के के रिश्तेदार उसके मामा आदि रहते थे। उन्होंने अपने उस लड़के के शरीर को पहचान लिया। बातचीत की। यथार्थ में तो वह लड़का था ही नहीं। लड़के के शरीर में महात्मा जी थे। थोड़ी देर इधर–उधर की बातें करते रहे किन्तु लड़के के शरीर को मामा, नाना आश्चर्य मानने लगे कि उनका लड़का उनको पहचान ही नहीं रहा है। कारण का यथार्थ पता लगाने के लिए श्रीनगर टैलीग्राम वगैरह देकर के लड़के के कब्र में महात्मा का जीर्ण–शीर्ण शरीर मिला। सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या हुआ? शनैः शनैः चर्चा फैलने पर लोगों ने पता लगा दिया कि अमुक स्थान पर रहने वाले महात्मा जी ने अपना शरीर छोड़ दिया है और हमारे लड़के के शरीर में प्रवेश करके वह कहीं चले गए हैं। मुसलमानों को तो यह जानकर हर्ष ही हुआ कि उनके बच्चे के शरीर को महात्मा जी ने स्वीकार कर लिया है। और उनका लड़का कहीं सजीव मौजूद है। किन्तु बहुत प्रयत्न के साथ पता लगाने पर भी वे लोग यह पता नहीं लगा सके कि उनके लड़के के शरीर को धारण करने वाले आजकल कहाँ विराजमान हैं।

इस प्रकार से परकाय प्रवेश की बहुत सी घटनायें समय–समय पर समाचार पत्रों में भी प्रकाशित होती रहती हैं। और समय–समय पर अनुभवी सन्तों ने इन क्रियाओं का अनुभव भी किया है। यथार्थ में परकाय प्रवेश किया है। किस प्रकार किया जाता है–पढ़िये इस भगवान पतंजलि देव के सैद्धान्तिक विचार–

बन्धकारण शैथिल्यात्प्रचार
संवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः।
(विभूतिपाद प. यो. दर्शन)

अर्थात्–मनुष्य का वासना भोग रूप कर्म चित्त के बन्धन का कारण है। जब योगी अपने समाधि बल से बन्धन के कारण को शिथिल कर डालता है और नाड़ियों में समाधि के द्वारा चित्त के आने जाने के मार्ग को स्पष्ट कर लेता है। उस समय योगी अपने चित्त को अपने शरीर से निकाल करके दूसरे के शरीर में प्रवेश करा देता है। चित्त के

निकल कर दूसरे के शरीर में प्रविष्ट हो जाने पर सभी इन्द्रियाँ चित्त के साथ-साथ दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाती हैं। जैसे मधुमक्खियों में प्रधान माक्षिकाराज रानीमक्खी के उड़ जाने पर अन्य मक्खियाँ उड़ जाया करती हैं और जहाँ वह रानीमक्खी बैठती है वहीं सब बैठ जाया करती हैं। इसी प्रकार से चित्त के अधीन सभी इन्द्रियाँ जिस शरीर में चित्त प्रवेश करता है उसमें वे भी प्रवेश कर जाती हैं। योगी का ये परशरीरावेश जीवित और अजीवित दोनों प्रकार के शरीरों में हुआ करता है। पढ़िये व्यास भाष्य की पंक्तियाँ-

लोलीभूतस्य मनसोऽप्रतिष्ठस्य शरीरे कर्माशयवशाद्बन्धः प्रतिष्ठेत्यर्थः तस्य कर्मणो बन्धकारणस्य शैथिल्यं समाधि बलाद् भवति प्रचार संवेदनं च चितस्य समाधिजमेव कर्मबन्धक्षयात स्वचित्तस्व प्रचार संवेदानाच्च योगी चित्तं स्वशरीरान्निष्कृष्य शरीरान्तरेषु निक्षिपति निक्षिप्तं चित्तं चेन्द्रियाण्यनु पतन्ति यथा मधुकरराजं मक्षिका उत्पतन्त मनुत्पतन्ति निविशमानमनु निविशन्ते तथेन्द्रियाणि परशरीरावेशे चिन्तमनुविधी यन्त।

श्री व्यास देवजी ने अपने भाष्य में जो भाव प्रकट किये वह ऊपर की पंक्तियों में लिखे जा चुके हैं। इस लेख में उदाहरणार्थ दो घटनायें श्री शंकराचार्य जी की एवं कश्मीर वाले योगी की परकाय प्रवेश की सच्ची घटनायें हैं। किन्तु कहीं-कहीं पर योगी जब अपने मन में परकल्याण की भावना रखता है तो जीवित शरीरों में भी अपने चित्त का आवेश कर लिया करता है। और ऐसा परशरीरावेश स्वीकार करके कहीं-कहीं योगीराज लोग दूसरों का भला किया करते हैं।

हमारे बहुत विस्तृत योग प्रचार कार्यक्रमों में बहुत स्थानों में इस प्रकार के परशरीरावेश देखे गये जिनमें स्वयं श्री प्रभुजी ने अपने चित्त का परशरीरावेश करके लोगों का भला किया। वरदान तक दिये। ऐसे शुद्धावेश के अन्दर जो-जो काम किये गये वे सब काम तत्काल उसी समय हो भी गये। कई स्थानों पर कई लड़कियों में श्रीकृष्ण का आवेश हुआ और वे आठ-आठ घण्टे उस भावावेश के अन्दर खड़ी रहीं किन्तु योगीराज लोग हर स्थान पर अपने चित्त का आवेश नहीं करते। कहीं-कहीं जहाँ अन्तःकरण परम शुद्ध होता है वहाँ पर ही किसी विशेष लक्ष्य को मद्देनजर रख कर वे अपने चित्त का परशरीरावेश किया करते हैं। इसमें भी कोई शंका की बात नहीं है कि योगी-योगिनियों ने परकाय प्रवेश किया। यह परकाय प्रवेश एक सिद्ध क्रिया है जिसके द्वारा योगीराज लोग अपने मनोवांछित लोक-हित के कार्य किया करते हैं।

गुरु पूर्णिमा का अमृत पर्व

—योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

हमारे देश में गुरु पूर्णिमा व व्यास पूर्णिमा—व्यास पूजा का पावन पर्व आषाढ़ माह की पूर्णिमा को बड़े धूम धाम व उल्लास से मनाया जाता है। ईश्वर प्रदत्त अद्‌भुत ज्ञान राशि वितरण गुरु परम्परा से अनादि काल से चला आ रहा है।

परमात्म ज्ञान के उस अथाह भण्डार से गुरुदेव द्वारा ही वह दिव्य ज्ञान संचारित होकर मानव धरातल तक पहुँचता है। जिससे सामान्य व्यक्ति भी इस ज्ञान का ग्राहक बन जाता है, बशर्ते व्यक्ति उस विद्या का उचित अधिकारी हो। गुरु मुख से ही परमात्म ज्ञान का श्रवण करके साधक अपने परमार्थ पथ पर चला करता है। गुरु मुख से प्राप्त विद्या ही फलवती होती है। गोविन्द से भी गुरु की महिमा अधिक बताई गई है। कहा है—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो लखाय।।

गुरु कृपा से ही ईश्वर के दर्शन संभव होते हैं। इसलिए प्रथम पूजा गुरुदेव की ही पूजा की जाती है। तत्पश्चात् गोविन्द की। सभी महान सन्तों ने गुरु की महिमा गाई है। गुरु शब्द शब्दे (क्रयादिगण) तथा गृ निरारणे इन दो धातुओं का व्युत्पन्न होता है। **'गृहाति उपदिशदि धर्मतिमति—गुरुः'** जो योगधर्म का उपदेश करे वही गुरु है। **''यदा गीर्यत स्तूयते देव—गन्धर्वा दिमिरिति गुरुः।''** अथवा देव गन्धर्वादि जिसकी स्तुति करते हैं वह गुरु हैं। जो गुरु वही पूर्ण है। गुरु वह है जो गरिमामय है। जिसमें गुरुत्वाकर्षण है जीवों को अपनी ओर खींच लेते हैं। जो सबसे बड़ा है सर्व समर्थ, व्यापक है, अनन्त है। पूर्णत्व गुरुत्व में ही है। उस पूर्ण सत्ता को ही शास्त्रों की भाषा में ब्रह्म कहते हैं। अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है। **''सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्व**—(गीता) जो सबको अपने में समेट लेता है। इसलिए वह सर्वरूप है। उसे सर्वगत भी कहा जाता है। सर्वगत होने से ब्रह्म पूर्ण है। उपनिषद् में मंत्र आता है। **''पूर्णमिदंः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।''** अर्थात् वह ब्रह्म पूर्ण है। यह जगत भी उससे व्याप्त होने के कारण पूर्ण कहा गया है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। यहाँ पर पूर्ण शब्द ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए

ही व्यवहृत हुआ है। श्रुति में 'रसो वै सः' कहकर ब्रह्म को रसरूप में माना है। रसों का मूल स्रोत चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्रमा में अमृत बनता है। वह अमृत ही रसरूप ब्रह्म है। गुरु में भी अमृत्व है। शिष्य को अमृत अमर बना देने की सामर्थ्य गुरुदेव में ही होती है, अन्य किसी में नहीं। गुरु पूर्ण समर्थ होता है चेतना का महास्रोत होता है। भगवान का अवतरण समय-समय पर इस संसार में होता चला आ रहा है। जब वे मानवाकृति में आते हैं, तब वे अपने सदुपदेश से, अपने दिव्य संस्पर्श से, लोकोत्तर चरित्र से जीव के कल्याण के लिए कृत संकल्प रहते हैं। इस रूप में भगवान का ऐसा मिलन जीव का आध्यात्मिक एवं भौतिक उभय मिलन होता है। उस समय वे गुरु शिष्य के रूप में ही होते हैं। उस क्षण जीव उस परम गुरु अपने इष्ट को पाकर यह भूल जाता है कि वह जन्मने और मरने वाला जीव है। वह इष्ट के रूप में तदाकार हुआ सिद्ध समर्थ गुरु अपने शिष्य के आत्मोत्थान के लिए मानव शक्ति का संचार करके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक मल के शोधन के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रियायें कराते रहते हैं।

भगवान कृष्ण गीता में मन और बुद्धि को इष्ट के सगुण रूप में समाहित कर देने की बात कहते हैं। भगवान की कृपा से जीव के मन और बुद्धि को अपने में विलय करा लेते हैं। जिससे जीव जीवत्व को त्याग कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। उस परम भाग्यशाली जीव को भगवान जीव ब्रह्मैक्य का बोध करा देते हैं। यही भगवान के अवतरण का रहस्य एवं उद्देश्य है। भगवान के इसी गुरुत्व के आकर्षण के कारण ही वे जगद्‌गुरु कहलाते हैं। जीवों का इस प्रकार परम गुरु से मिलन सहसा संयोगवश नहीं होता है। जन्म जन्मान्तर की उस आत्मदेव से मिलने की चाह तद्‌भावना भक्ति होकर उस जन्म के दृढ़ संस्कार सम्बन्ध के स्थापित होने पर यह बात संभव हो जाती है। अन्यथा परात्पर शक्ति के पृथ्वी पर आविर्भाव होने पर भी उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी आपने कर्मों की मलीनता से भगवान के निन्दक ही बनकर जीवन बिता देते हैं। हम में से बहुत से भाग्यवान पुरुषों ने उस परम देव का श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सद्‌गुरु रूप में दर्शन एवं पावन सानिध्य का परम लाभ प्राप्त किया है। उनके पावन चरण तल में बैठने पर जीव की समस्त कामनायें एवं वासनायें विलुप्त हो जाती थीं। परम शांति एवं आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। प्राण स्वतः ही निश्चल हो जाता था। सभी उपस्थित शिष्य समुदाय का जिनके गुरुदेव ही एक मात्र परायण एवं जीवन के सूत्रधार हैं यह देखकर **'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इवा'**—यह वचन मानस पटल पर घूमने लगता था।

ऋषि कल्प गुरुदेव के देदीप्यमान मुखमण्डल को देखकर अध्यात्म की किरणें स्वत: शिष्यों के मानव तल को स्पर्श कर लिया करती थीं। गुकार अन्धकार का वाचक है और रुकार अन्धकार निवारक या प्रकाश देने वाला। जो अन्धकार अज्ञान को दूर कर शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दे वही गुरु है–ऐसा गुरुगीता का वचन है।'' नास्ति तत्वं गुरो: परम''। गुरुदेव से आगे कोई तत्व नहीं यह भगवान् सदाशिव का आदेश है। शिष्य का जीवन–मृत्यु समर्थ गुरुदेव के हाथ में होता है। आवश्यकता है शिष्य के गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की जो काफी दु:साध्य है। योग से जीव और ब्रह्म का एकत्व होता है। गुरु भक्ति से गुरु शिष्य का एकत्व हो जाता है। जो शिष्य के जीवन का लक्ष्य रहा करता है। इसीलिए नित्य ही गुरु गीता के इस श्लोक का मनन करता हुआ कहता है–

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरंजनम्।
नित्यबोधंचिदानन्दं गुरु ब्रह्म नमाम्यहम्॥

अर्थात् जो नित्य है, शुद्ध है, आभास रहित, आकार रहित, माया रहित, नित्यबोध स्वरूप, चेतन और आनन्द रूप ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार गुरु की सेवा से, चिन्तन से शिष्य गुरु की उपासना करता है वह भव बन्धन से मुक्त हो जाता है इसलिए गुरुदेव को भवभय विनाशक कहा गया है। गुरुदेव स्वयं मन्त्र स्वरूप होकर शिष्य के आध्यात्मक शरीर में अनुप्रविष्ट तत्पश्चात् शिष्य को अपने नित्य चैतन्य स्वरूप का बोध कराते हैं। शास्त्रों का लेख है–

''गुरु पूजा विहिनानाम् न सिद्धि: स्याद्कदाचन''। जो गुरुदेव की पूजा आराधना नहीं करते तथा गुरुदेव को संतुष्ट नहीं रखते उन्हें कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। जो गुरुदेव के दिये मंत्र का जाप करता रहता है तथा गुरुपदिष्ट मार्ग से ध्यान करता है वही गुरुदेव का प्रिय भक्त होता है उसे ही अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है।

अत: शिष्य को गुरु निष्ठ रहना चाहिए। फिर उसके लिए भूतल में कुछ भी अप्राप्य नहीं रह जाता। इस बार गुरु–पूर्णिमा 19 जुलाई को सम्पन्न होना है। गुरु परम्परा को मानने वाले लोग इस अमृत पर्व को अत्यन्त धूमधाम से मनावें ताकि उन्हें भक्ति–मुक्ति अर्थात् इस लोक के सुख–ऐश्वर्य तथा मुक्ति दोनों की प्राप्त हो।

जय गुरुदेव !

श्रीमद्भागवत् में योगपरिचर्चा

— डॉ. विजय सिंह

सप्तम स्कन्ध के नवमें अध्याय में प्रहकार जी द्वारा नरसिंह भगवान की बड़ी मार्मिक एवं तात्विक स्तुति किया गया है। सभी देवगण नरसिंह भगवान के क्रोधावेश को शांत न कर सके। सबकी स्तुतियाँ निष्फल हुईं। तब ब्रह्मा जी ने प्रहलाद को कहा—बेटा! तुम पास जाकर इन्हें शांत करो। प्रहलाद ने पास जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उसे देखकर उनका हृदय दया से भर उठा। वे प्रहलाद को उठाकर के उसके सिर पर अपना कर कमल रखा जिससे तत्काल प्रहलाद जी को परमात्व तत्व का साक्षात्कार हो गया। भाव समाधि से एकाग्र मन द्वारा भगवान के अपरमित गुणों का चिन्तन करते हुए प्रेम गदगद् वाणी से स्तुति की—

अस्तौषीद्धरिमेकाग्रमनसा सु समाहितः।
प्रेमगद्गदया वाचा तन्न्यस्त हृदयेक्षणः॥

अ. 9 स्क. 7

भगवन! आप सत्वगुण के आश्रय हैं। जगत् के कल्याण एवं सत् पुरुषों के अभ्युदय हेतु तथा उन्हें आत्मानन्द प्राप्त कराने हेतु आप अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं। जिस असुर को मारने के लिये आपने क्रोध किया, वह मारा जा चुका है। अब आप अपना क्रोध शांत कीजिए। संसार में सब नाम—रूप से आपका ही स्वरूप विराजता है।

आपकी अनुमति से काल द्वारा गुणों में क्षोभ होने पर माया मनः प्रधान लिंग शरीर का निर्माण करती है। इससे ही अविद्या द्वारा कल्पित मन, दस इन्द्रिया और पाँच तन्मात्रा इन सोलहों से युक्त संसार चक्र है। प्रभो! इस संसार रूपी अँधेरे कुयें में कालरूप सर्प डँसने के लिए सदैव तैयार रहता है। विषयासक्त लोग इसी में गिरते हैं। मैं भी उसी में गिरने जा रहा था। देवर्षि नारद ने मुझे अपनाकर बचा लिया—

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे,
कामाभिकाममनु यः प्रपतन्प्रसंगात्।
कृत्वाऽऽत्मसात् सुरर्षिणा भगवन गृहतिः,
सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्य सेवाम्॥ 28॥

अ. 9. स्क. 7

भगवन्! इस सम्पूर्ण विश्व को स्वयं ही अपने में समेट कर आत्मसुख का अनुभव करते हुये निष्क्रिय होकर प्रलयकालीन जल में शयन करते हैं। उस समय स्वयं सिद्ध योग के द्वारा बाह्य दृष्टि को बंद कर आप अपने स्वरूप प्रकाश से निद्रा को विलीन कर लेते हैं और तुरीय ब्रह्मपद में स्थित रहते हैं–

न्यस्येदमात्मनि जगद् विलयाम्बुमध्ये,
शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः।
योगेन मीलित दृगात्मनिपीतनिद्र–
स्तुर्येस्थितो न तु तमो न गुणांश्चयुङ्क्षे।।32।।

अ. 9 स्क. 7

प्रभो! मोक्ष के दस साधन प्रसिद्ध हैं–मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्र श्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्मपालन, युक्तियों से शास्त्रों की व्याख्या, एकान्तसेवन, जप और समाधि।

मौन व्रत श्रुतत पोऽध्ययन स्वधर्म–
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ताभवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम्।।46।।

अ. 9. स्क. 7

परन्तु जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं है, उनके लिये जीवन निर्वाह के साधन मात्र हैं और भेद खुल जाने पर जीविका भी जाता रहता है। (वर्तमान समय में ऐसे ढोंगियों का पर्दाफाश होता दिखाई पड़ता है वे जेल में हैं)

प्रभो! काष्ठ मन्थन से जिस प्रकार अग्नि प्रकट की जाती है, उसी प्रकार योगीजन साधना से आपको कार्य कारण दोनों में खोज लेते हैं। क्योंकि कार्य और कारण भी आपका ही स्वरूप है–

रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे,
बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य।
युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां
योगेन वह्निमिव दारुषुनान्यतः स्यात्।।47।।

प्रहलाद जी के तात्विक स्तुति से प्रसन्न होकर श्री नृसिंह भगवान ने कहा–प्रहलाद मैं तुम पर परम प्रसन्न हूँ। जो भी तुम्हारी अभिलाषा हो वर माँगलो। बार–बार कहने पर भी प्रहलाद जी प्रलोभित नहीं हुये। वे भगवान के अनन्य प्रेमी थे। उन्होंने कहा–जगद्गुरो! परीक्षा के सिवा आपका वरदान का प्रलोभन का कोई कारण नहीं दिखता। आपसे जो

सेवक कामनायें पूर्ण कराना चाहता है, वह सेवक कैसा? वह तो लेन–देन करने वाला बनिया है। भगवान ने कहा–प्रहलाद! मेरी प्रसन्नता के लिये तुम इस लोक में एक मनवन्तर तक दैत्याधिपतियों के समस्त भोग स्वीकार कर लो।

ब्रह्मा जी ने कहा–प्रभो! आप सबके जीवन दाता और मेरे भी पिता हैं। मेरे वरदान के कारण हिरण्यकशिपु मतवाला हो गया था। तपस्या, योग और बल के कारण उदण्ड होकर वेद विधियों को नष्ट कर दिया था।

''तपोयोगबलोन्नद्धः समस्तनिगमानहन्''

ब्रह्मा जी को भी चेतावनी देते हुये नृसिंह भगवान ने कहा–आप दैत्यों को ऐसा वर न दिया करें। वे वहीं देखते–देखते अन्तर्धान हो गये।

नारद जी युधिष्ठिर से बोले–ऋषियों के श्राप से श्रापित होने के कारण ये दोनों दैत्य (हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष) भगवान द्वारा मारे जाने पर भी मुक्त नहीं हुए। आगे रावण एवं कुम्भकर्ण के रूप में जन्म लिये। भगवान श्री राम के पराक्रम से इनका अन्त हुआ। वे ही अब इस द्वापर युग में शिशुपाल और दन्तवक्र के रूप में पैदा हुए थे। भगवान के प्रति बैरभाव होने के कारण जैसे भृंगी द्वारा पकड़ा कीड़ा भय से ही उसका स्वरूप प्राप्त कर लेता है वैसे ही वे भगवान कृष्ण में समा गये।

युधिष्ठिर! तुम्हारा भाग्य प्रशंसनीय है क्योंकि परब्रह्म श्रीकृष्ण मनुष्य रूप में गुप्त रूप से निवास करते हैं। वे तुम्हारे हितैषी, ममेरे भाई, गुरु एवं स्वयं आत्मा श्रीकृष्ण हैं।

प्राचीन काल में मायावी मायासुर ने जब रुद्रदेव के कीर्ति में कलंक लगाना चाहा तब इन्हीं भगवान श्रीकृष्ण ने उनके यश की रक्षा और विस्तार किया था।

युधिष्ठिर के पूछने पर श्री नारद जी ने इस कथा को विस्तार से दसवें अध्याय में कहा है। संक्षेप में देवताओं द्वारा असुरों को जीत लेने पर मय दानव ने तीन शक्तिशाली विमान सोने, चाँदी और लोहे के बनाये। उसमें अपरमित सामग्रियाँ भरी हुई थीं। दैत्य सेनापतियों ने इस विमान में छिपकर सबका नाश करने लगे। देवतादि सब शंकर भगवान की शरण में गये और कहा–प्रभो! त्रिपुर में रहने वाले असुर हमारा नाश कर रहे हैं। देवाधिदेव! आप हमारी रक्षा कीजिए।

भगवान शंकर ने कहा–डरो मत! उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाकर तीनों पुरों पर छोड़ा। जिसके प्रभाव से सभी पुरवासी निष्प्राण होकर गिर पड़े। मय दानव ने उन मृत असुरों को उठाकर अपने बनाये अमृत कुण्ड में डाल दिया उस सिद्ध अमृत–रस का स्पर्श होते ही असुरों का शरीर तेजस्वी, वज्र के समान सुदृढ़ और जीवित हो उठा।

तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः।
तानानीय महायोगी मयः कूपरसेऽक्षिपत्।।59।।
सिद्धामृतरसस्पृष्टा वज्रसारा महौजसः।
उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव वह्नयः।।60।।

अ. 10, स्क. 7

उन्हें जीवित देखकर शिव जी के संकल्प पूर्ति हेतु भगवान विष्णु गौ बन गये तथा ब्रह्मा जी बछड़ा बने तथा तीनों पुरों में जा–जाकर उस सिद्धरस के कुएँ का सारा अमृत पी गये। भगवान शंकर ने अभिजीत मुहूर्त में अपने प्रचण्ड बाणों से तीनों पुरों को जला दिया। जिससे भगवान शिव ''पुरारी'' कहे जाते हैं।

ग्यारहवें अध्याय में विस्तार से मानव धर्म, वर्णधर्म और स्त्री धर्म का वर्णन किया गया है। युधिष्ठिर जी ने कहा—श्री नारद जी आप स्वयं ब्रह्माजी के प्रिय पुत्र हैं। आपकी तपस्या, योग एवं समाधि के कारण आपका अधिक सम्मान है—

भवान्प्रजापतेः साक्षादात्मजः परमेष्ठिनः।
सुतानां सम्मतो ब्रह्मंस्तपोयोगसमाधिभिः।।3।।

अ. 11, स्क. 7

नारद जी ने कहा—राजन! उन नारायण भगवान को नमस्कार करके उनके मुख से सुने सनातन धर्म का वर्णन तुम्हें सुनाता हूँ। धर्म के तीस लक्षण–सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित–अनुचित विचार, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, समदर्शिता, महात्माओं की सेवा, सांसारिक भोगों से धीरे–धीरे निवृत्ति, निर्भिमानता, मौन, आत्मचिंतन, प्राणियों के प्रति प्रेम भाव, मनुष्यों में अपने आत्मा तथा इष्टदेव का भाव, संतों के आश्रय भगवान कृष्ण के नाम–गुण–लीला का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार, आत्मसमर्पण, आदि मानव का परम धर्म है।

ब्राह्मण का धर्म अध्ययन, अध्यापन, दान लेना–देना, यज्ञ करना–कराना ये छः कर्म हैं। पति की सेवा करना उसके अनुकूल रहना, सर्वदा पति के नियमों की रक्षा करना, पतिव्रता स्त्री के धर्म हैं।

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

गुरु जी ने यम दूतों को लताड़ा

— जगदीश राय बंसल ''अधम'' मो. 9212434003

हम सब अपने को अत्यन्त भाग्यशाली समझते हैं कि अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक योगाधिपति महाप्रभु श्री राम लाल जी महाराज एवं अखण्ड मण्डलाकार जगत नियन्ता योग योगेश्वर गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने हमको अपनी अहेतुकी कृपा से सहज ही चरण शरण दे रखी है। ऐसे दुर्लभ गुरु देव को कोटि–कोटि नमन। मगर वे और भी अधिक भाग्यशाली हैं, जिनको बचपन से ही श्री सिद्ध गुफा की पावन रजकणों में खेलकूद एवं भाग्य विधाता की दिव्य गोद का लाड़ प्यार तथा हँसते–हँसाते ढेरों आशीर्वाद मिलते रहे हैं। निश्चय ही यह अपने–अपने पूर्व कृत शुभसंचित साधन योग का प्रतिफल रहा होगा। ऐसे ही उदाहरण में हमारी एक आदरणीया गुरु बहिन जी का नाम है श्रीमति बीरमती शर्मा। वर्तमान में बहिन जी गोहाना मंडी के राजकीय गर्ल्स हायर सैक. स्कूल से सेवा निवृत पश्चात रोहतक (हरियाणा) में अपने भरे पूरे परिवार के साथ रह रही हैं। अपने नव निर्मित खुले भवन के एक कमरे में सुन्दर गुरु दरबार सजाया हुआ है जो देखते ही बनता है। बहिन जी की ध्यान स्थिति और परिवार पर गुरु कृपाओं के बादल बराबर बरसते रहे हैं। ऐसी भव प्रत्यय योगिनी पर अवश्य ही आराध्य देव जी का शक्ति पात संकल्प भी रहा होगा।

मगर उन गुरु कृपा बादलों को परिभाषित करने के स्थान पर वह अमृत अंजुलि में ही रह गया। बात–बात में मात्र यही बून्दा–बान्दी हुई कि मेरी एक बहिन सावत्री जीन्द (हरियाणा) में रहती थी। वह सादी भोली, अनपढ़ और गरीब सी थी। बात सन् 2006 की है। सावत्री बीमार हो गई। स्थानीय चिकित्सकों ने जाँच पड़ताल करके बतलाया कि इसकी नस फट गई है। इसका आपरेशन रोहतक में सम्भव है अतः इसे शीघ्रातिशीघ्र पी.जी.ए. में ले जाएं। रोहतक लाते ही तुरन्त दोबारा टैस्टिंग हुई और आई.सी.यू. में रखा गया। निर्धारित समय पर आपरेशन तो सन्तोषजनक हो गया मगर सावत्री को समय अवधि में होश नहीं आया। डॉ. समझ नहीं पा रहे थे कि अब क्या किया जाए? इस संकट के समय गुरु देव भगवान की याद आना तो स्वाभाविक ही है।

जब दवा से बात न बनें तो दुआ से बनती है–

बिगड़ी बनाने वाले–बिगड़ी बना दे

सावत्री की मूर्छा तुरन्त हटा दे।।

कितनों को तूनें जीवन दान दिया है,

घनेरों को तूनें अभय किया है,

गुरु जी आकर प्राण बचा दे।

सावत्री की मूर्छा .... इत्यादि।

हम आप सभी जानते हैं कि अपने सिद्ध योगाधिपति जी न किसी की अमीरी को देखते हैं, न किसी की शिक्षा को देखते हैं, न किसी के रवाब–पद–प्रतिष्ठा आदि को देखते हैं अपितु तारणहार जी जन–जन के कल्याणार्थ हर समय–हर स्थान पर–हर बच्चे की सदैव रक्षा करते हैं। ये रक्षा चाहे हिंसक आक्रमण से हो–चाहे उग्रवाद से हो–चाहे तूफान से हो–चाहे अग्निकांड से हो–चाहे धॉयं–धॉयं दौड़ती रेल दुर्घटना से हो–और चाहे प्राणी के सांस खींचते यम दूतों .... इत्यादि से हो। अपने आशुतोष जी आत्म सलाघा हैं अतः शिवा के मन में लहर आ ही जाती है। इसीलिए कहते हैं कि जहाँ इष्ट होता है वहाँ अनिष्ट नहीं होता।

आदरणीय गुरु बहिन सावत्री के साथ भी ऐसा ही हुआ। आई.सी.यू. में बहत्तर घण्टे बीतने के पश्चात्–जब होश आया तो यकायक अपनी हरियाणवी भाषा में बोलीं, मन्नैं काले–काले डराने–डराने दो जणें लेण आए थे (अर्थात् मुझे काले–काले रंग के डरावनी सूरत वाले दो आदमी लेने आए थे)। पर एक दाढ़ी आला–हरी कान्नी की काच्ची धोती का पल्ला पकड़े आया (अर्थात् एक दाढ़ी वाला हरी किनारी की बहुत सफेद नई धोती का एक भाग हाथ से पकड़े आया) उसने उन दोनों को जोरदार लताड़ा, बोले छोड़ दो इसे, यह हमारा बच्चा है। वे दूत होंगे, भाग गए और दाढ़ी वाला मेरे तैं बोल्या, जा भजन करके एक साल बाद आना। वो दाढ़ी वाला शीरी (श्री) चन्द्र मोहन होगा?

मिले हों धर्मराज ही, जिन्हें गुरु रूप में।

गिर नहीं सकता वो, विकारों के कूप में।।

आश्चर्य! महान आश्चर्य कि सावत्री देवी ठीक एक वर्ष बाद ही परलोक सिधारी। भले ही अपनी आरती की यह दिव्य पंक्ति न जानामि जापं न जानामि ध्यानं .... बहिन जी पर पूर्णतया खरी उतरती हों मगर गुरु जी के प्रति श्रद्धा की विरक्त शिष्या थी। अपने जीवन की पाठशाला में केवल गुरु जी के नाम के साथ श्री बोलते बहुत अच्छी लगती थी।

फिर क्षण भर गुरु दरबार की तरफ निहार कर मुझे याद दिलाते हुए बीरमती जी एक

झटके से बोली कि यह वही सावत्री है जो कई साल पहले परिवार के विभाजन में अकेली रह गई थी और जीन्द में ही एक किराए की कोठरी ले कर गुरु कृपा से अपना साधारण जीवन उदासी की गोद में लोरीयाँ सुना कर व्यतीत करती थी। किसी ने सत्य कहा है कि–

शेरों को नहीं बलि चढ़ते देखा–बकरे ही चढ़ाए जाते हैं
बलवानों को नहीं कोई टोकते देखा गरीब ही सताए जाते हैं।

बात सन् 1987 की है। एक बार जब सिद्धों के सरदार गुरु देव महाराज का जीन्द की अग्रवाल धर्मशाला में श्री सिद्ध योग कार्यक्रम था तो उचित अवसर पाकर बहिन सावत्री देवी अपने पतित पावन जी के श्री चरणों में एक अनुनय विनय कर बैठी कि गुरु जी, मन्नैं दो खाट की अपनी छाँत चाहिए अर्थात् गुरु जी मुझे छोटा मोटा अपना घर चाहिए। भाग्य विधाता जी ने बहुत प्रसन्नचित से अपनी मधुर मुस्कान के साथ आशीर्वादात्मक मौन स्वीकृति प्रदान की। सब जानते हैं योगी वचन पलटैं नहीं–पलट जाए ब्रह्माण्ड।

बदली तेरी नजरें–कि नजारे बदल गए।
मोड़ा किस्ती ने रुख कि किनारे बदल गए।।

अगली ही प्रात: सावत्री के पति देव के अंकल जी सावत्री के पास आए और आत्मीयता से बोले, बेटी सावत्री मैं अकेला हूँ। मैं तुझे गोद लेना चाहता हूँ। आज से और अभी से मेरा मकान–सामान, चल अचल सारी सम्पति सब कुछ तुम्हारा हुआ। वहीं चल कर रहो। पुत्री मेरा आशीर्वाद है कि–

गुलशन की हर कलि खुशबू दे आपको।
सूरज की हर किरण रोशनी दे आपको।।
मैं तो कुछ देने के काबिल ही नहीं हूँ।
वो देने वाला हर खुशी दे आपको।।

मेरी बहिन सावत्री पुलकित एवं आनन्दित हो उठी। अमंगलहारी धोती कुर्ते वाले के श्री चरणों में मानसिक साष्टाँग प्रणाम करके विश्वास की आंच और भरोसे की कढ़ाई के सहारे बोल उठी, काश! लखदातार से मैं कोठी मांग लेती।

- गुरु महिमा इतनी विशाल है कि हमारी बुद्धि में नहीं आती,
- जितनी बुद्धि में आती है उतनी मन में नहीं आती,
- जितनी मन में आती है उतनी जवाँ पर नहीं आती,
- जितनी जवाँ पर आती है उतनी लिखने में नहीं आती।

।। जय गुरु देव।।

॥ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः॥

सद्गुरु सत्ता में नम्रता

प्रेषक–कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

सद्गुरु सत्ता का सानिध्य पाकर साधक अपने को कृतकृत्य मानने लगता है। उसकी विभिन्न प्रकार की अज्ञानता की गाँठ स्वतः खुलने लगती है। साधक यदि जिज्ञासु भाव से साधन में रत रहता है तो वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। हमारे सद्गुरुदेव योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सदैव यह कहा करते थे कि लल्ला–इतनी साधना करो जिससे अपने पूर्वजन्म एवं मृत्यु को जान लो। हमारे सिद्धयोग के बहुत से साधकों को ज्ञान भी होगा। जिन्होंने गृहत्याग कर साधक की वृत्ति से साधन किया। शायद सद्गृहस्थ साधक भी जानते हों। यह अत्यन्त गुप्त किन्तु खोज का विषय है। यह वस्तुतः गुप्त धन की तरह होता है। शायद ही कोई साधक इसका खुलासा करे। वर्तमान युगधर्म की जटिलता से आज सब परेशान एवं पीड़ित हैं। हम अपनी समस्याओं एवं सामाजिक चकाचौंध में खो गये हैं। एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा में जुटे हुए हैं। जबकि हमें कर्म करना चाहिए। योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने गीता में स्पष्ट रूप से कहा है–''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन''। यद्यपि किसी भी कर्म का फल अवश्य ही प्राप्त होता है। किन्तु व्यक्ति पहले फल के बारे में सोचता है। कर्म करने से व्यक्ति में साहस, आत्मविश्वास एवं दृढ़ता आती है। गीता में अर्जुन को भगवान ने एक छात्र की तरह सिखाया। इसीलिए गीता का सार निकला। अन्त में अर्जुन ने कहा–''**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**'' अर्थात् अब मैं आपका पूरी तरह शिष्य बन गया हूँ तथा आप के शरण में हूँ।

योग्य शिष्य (लाहिड़ी महाशय) सद्गुरु सत्ता से आज्ञा पाकर वापस आ गया। सद्गुरुदेव के पास से वापस आने पर महाशय मुरादाबाद के एक बंगाली परिवार के यहाँ ठहरे। महाशय का भव्य स्वागत बंगाली परिवार की तरफ से हुआ। वहाँ पर महाशय ने सत्संग का वातावरण बनाने के लिए आध्यात्मिक चर्चा शुरू की। वहाँ एकत्र कुछ लोग भी थे। जिन्होंने उनकी बात सुनने के बाद कहा–आजकल भारत सन्तों से विहीन हो गया है। परन्तु अपनी बात पर जोर देते हुए महाशय ने कहा–ऐसी बात नहीं है। आज आवश्यकता इस बात की है कि आप संतों को श्रद्धा एवं आत्मविश्वास के साथ ढूँढ़िए। संत तो इस धराधाम पर सदैव विराजमान रहते हैं। हमारे में इतनी शक्ति नहीं कि हम उन्हें पहचानें। लाहिड़ी महाशय तो अपने सद्गुरु सत्ता से शक्ति संचय कर आये थे। सो उन्होंने अपने ऊपर घटित समस्त

वृत्तान्तों को सुनाया। किन्तु लोगों को विश्वास ही नहीं हो रहा था। वे लोग लाहिड़ी महाशय की बात को पर्वतीय वायु का मस्तिष्क पर दबाव मान बैठे। सद्गुरु देव ने वापस होते समय कहा था कि—जब तुम मुझे जहाँ पुकारोगे मैं वहाँ प्रकट हो जाऊँगा। इस आत्मविश्वास से भरे हुए महाशय ने कहा कि—''मैं उस हिमालय वाले बाबाजी को यहाँ बुला सकता हूँ। मित्र मण्डली की जिज्ञासा और बढ़ी। उन्होंने कहा ठीक है तुम अपने बाबाजी का दर्शन कराओ। अर्ध अनिच्छा से महाशय ने एक शान्त कमरे का चयन किया। दो ऊनी कम्बल की व्यवस्था करने को कहा। तुरन्त दो कम्बल की व्यवस्था हो गयी। उन्होंने (महाशय) कहा कि—मैं इस कमरे में एकान्त में बैठूँगा। आप लोग बाहर चुपचाप दरवाजे पर बैठे। मेरे गुरुदेव आकाश में प्रकट होंगे। लाहिड़ी महाशय गुरुदेव का चिन्तन करते हुए ध्यान में बैठे तथा सद्गुरु की विनम्रतापूर्वक आह्वान करने लगे। शिष्य की आन्तरिक इच्छा को जानकर सद्गुरु की ज्योतिर्मयी मूर्ति प्रकट हुई। सद्गुरुदेव ने कहा—लाहिड़ी इतनी छोटी बात के लिए मेरा आह्वान किया। यद्यपि गुरुदेव की दृष्टि कठोर थी। लेकिन शिष्य के मान तथा अविश्वासी लोगों को सत्ता का विश्वास भी देना आवश्यक था। दीन वाणी में महाशय ने कहा—महाराज आपको देखकर इनको जब विश्वास हो जायेगा, तब यह किसी आध्यात्मिक सत्ता के प्रति अविश्वास नहीं करेंगे। सद्गुरुदेव (बाबाजी) ने कहा—अतीन्द्रिय सत्य उन लोगों के योग्य है। उन्हीं के द्वारा खोजे जाने पर जो अपने स्वाभाविक भौतिकवाद से उत्पन्न सन्देह पर विजय पाते हैं। वही सच्चे साधक होते हैं। इसलिए मुझे जाने दो। किन्तु सद्शिष्य सद्गुरुदेव के चरणों में गिर पड़ा और अपनी भूल को स्वीकारा। लेकिन विनम्रतापूर्वक महाशय ने कहा कि—आध्यात्मिक दृष्टि से अंधे लोगों के लिए ही आपको बुलाने का मैंने साहस किया है। आप मेरी प्रार्थना पर दया करके पधार चुके हैं। इसलिए हमारे मित्रों पर आप कृपा करें। जिससे मेरे अद्भुत कथन पर इनको विश्वास हो जाए। बाबाजी ने थोड़ी देर ठहरने का आश्वासन दिया। महाशय का हृदय उत्साह से भर गया। उन्होंने दरवाजा खोला तो लोग निस्तब्ध रह गये। उन्हें सद्यः देखने के बाद भी अपनी इन्द्रियों पर विश्वास नहीं हो रहा था। सद्गुरुदेव की मूर्ति कम्बल पर बैठी द्युतिमान हो रही थी। उसी में से एक ने पुनः अविश्वास के साथ कहा— यह तो लगता है सामूहिक सम्मोहन है। हम लोग इसी दरवाजे पर बैठे हैं कैसे कोई व्यक्ति बिना दरवाजा खोले अन्दर प्रवेश करता है। लोग योग की आठों सिद्धियों के बारे में नहीं जान रहे थे। इसलिए इस प्रकार की बात को कहा। बाबाजी समझ गये। सब को अपने शरीर को स्पर्श करने की आज्ञा दे दी। बाबाजी के स्पर्शमात्र से सभी के अविश्वास समाप्त हो गये। समुदाय ने झुककर साष्टाँग प्रणाम किये। बाबाजी समझ रहे थे कि इनको और भी आत्मविश्वास दिलाने की आवश्यकता है। जिससे समस्त सन्देह दूर हो

जाये। इस उद्देश्य से बाबाजी ने कहा–हलुआ बनाया जाये। महाशय समझ गये कि सद्गुरुदेव भौतिक शरीर की प्रतीत के लिए ऐसा कर रहे हैं। तुरन्त हलुवा बनाकर लाया गया। बाबाजी के साथ सब लोगों ने प्रसाद स्वरूप हलुआ खाने के बाद बाबाजी ने सबको आशीर्वाद दिया। उन्हें आध्यात्मिक उपदेश भी दिये। उसके बाद बाबा का शरीर सबके सामने ही प्रकाश पुञ्ज में घनीभूत होती रही तथा वाष्पमय रूप में रूपान्तरित होकर अदृश्य हो गयी।

मित्रमण्डली में से एक महाशय ने श्रद्धा के साथ कहा– मैंने आज मृत्युजयी को अपने आँखों से देखा। वास्तव में यह पृथ्वी संतों से खाली नहीं है। सद्गुरु सत्ता देश एवं काल के साथ अपनी लीला करते हैं। क्योंकि वे देश काल की सीमा से परे होते हैं। लोगों ने समवेत स्वर से स्वीकार किया कि–महाशय आपके कारण हम लोगों ने एक ऐसे महापुरुष का दर्शन किया जिनके हाथ में स्वर्ग और मृत्युलोक की कुञ्जी है। महाशय का गृहस्थ में रहते हुए भी आध्यात्मिक पूँजी उत्तरोत्तर बढ़ती रही। लोक कल्याण की वृत्ति तथा क्रियायोग में लोगों को दीक्षित करने का जो दायित्व सद्गुरु सत्ता से मिला था वह जारी रहा।

महाशय ने अपने शिष्यों को अपने एक अनुभव को बताते हुए कहा कि–मैं स्वयं धार्मिक मेले में एक व्यक्ति को भिक्षापात्र लेकर तथा सन्यासी बाना को देखकर उसे ढोंगी समझ बैठा। किन्तु जब उस सन्यासी के एकदम पास से होकर गुजरा तो देखा बाबाजी उस सन्यासी के पास नतुजान हुए बैठे हैं। मैंने कहा–गुरुजी यह क्या कर रहे हो। सद्गुरु सत्ता से आवाज आयी मैं इनका पाद प्रक्षालन कर रहा हूँ। इसके बाद इनके भोजन पकाने के बर्तन को भी साफ करूँगा। मेरी समझ में आ गया कि मैंने इन्हें पहचाने बिना ऐसी अज्ञानता युक्त धृष्टता की है। यह मेरे लिए गुरुदेव की सीख है कि बिना किसी को समझे उसके बारे में कुछ कहना अनुचित होगा। वास्तव में इस दृश्य जगत में सब जीवों में उस परमात्मा का ही वास है। तो सब एक समान ही हैं। महान गुरु ने कहा–ज्ञानी अज्ञानी साधुओं की सेवा करके मैं नम्रता के गुण सीख रहा हूँ। जो ईश्वर को सबसे प्रिय हैं। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने ब्राह्मणों के पाद प्रक्षालन का कार्य अपने ही जिम्मे उठाया। ना जाने किस वेश में बाबा मिल जायें भगवान यह लोकोक्ति भी जगत में व्याप्त है। पृथ्वी कभी भी वीरों, संतों से खाली नहीं थी न रहेगी। मात्र उसका रूपान्तरण हो सकता है। जिसको समुदाय समझ न सके।

यद्यपि कि कलिधर्म है फिर भी धर्म, धार्मिक कृत्य, धर्माचरण लुप्त नहीं हो सकता उसकी मात्रा घटती बढ़ती रहेगी। अस्तु इस कलिकाल में सद्गुरुदेव द्वारा प्रदत्त मन्त्र का जप और चिन्तन साधक को सद्मार्ग पर निश्चय ही ले जायेगा।

श्री सद्गुरुदेव जी कृपा–2

—श्याम मनोहर श्रीवास्तव, ललितपुर

यह घटना सन् 1972 एवं 1973 की है। मेरी शादी सन् 1972 नवम्बर माह में हुई थी। माह नवम्बर 1972 को सीपरी बाजार के कृष्ण मंदिर में श्री गुरुदेव भगवान का योग प्रचार का कार्यक्रम चल रहा था शादी के तुरन्त बाद मेरी पुनः पत्नि के साथ दीक्षा हुई। मेरा पूरा परिवार माता–पिता, छः भाई पत्नियों सहित दीक्षा लिये हुए हैं। पू. पिताजी का 2004 में स्वर्गवास हो चुका है। माताजी प्रभु कृपा से जीवित हैं तथा उनकी उम्र लगभग 93–94 वर्ष की हो चुकी है। पूर्णतया स्वस्थ हैं। चलती, फिरती, खाती–पीती हैं। सन् 1974 में ललितपुर जिला बनने पर मैं तथा पिताजी दोनों लोगों का स्थानान्तरण झांसी से ललितपुर हो गया था। तब से ललितपुर में निवास कर रहा हूँ।

शादी के उपरान्त वर्ष 1973 में दादा गुरु के जन्मोत्सव रामनवमी पर झांसी के सभी भाई बहिनों एवं अपनी पत्नी के साथ आश्रम गया। पहले मैं अकेला एक बैग लेकर जाता था लेकिन इस बार पत्नि के साथ पहली बार अटैची लेकर गया जिसमें कपड़ों के साथ अन्य सामान भी रखा था। आगरा से हम सभी भाईयों के साथ पत्नि सहित बैठ गये। आगरा से एत्मादपुर के बीच खूब भजन सत्संग हुआ करता था डिब्बे में ही। सब भाई बहन एक दूसरे का सामान लेकर उतरते चढ़ते चलते थे जैसे ही एत्मादपुर पर गाड़ी खड़ी हुई सबने अपना तथा एक दूसरे का सामान उतार लिया। गाड़ी चली गई सबने अपना–अपना सामान देखा। मैंने अपनी अटैची देखी सब सामानों में अटैची नहीं थी। भाईयों ने कहा तुम अटैची कहां लाते थे। तो मैंने कहा पत्नि की ओर इशारा करके अबकी बार लाया था। अब किसी का कोई बस नहीं था। अगला स्टेशन टूंडला है वहीं जाकर गाड़ी मिल जाए तो अटैची मिल सकती है। टूंडला जाने का कोई साधन नहीं था। स्टेशन से पैदल के आलावा एत्मादपुर का कोई साधन नहीं था। सबने आशा छोड़ दी थी कि अटैची नहीं मिलती। मेरे मन में विचार आया कि लोग कहेंगे आश्रम गये थे अटैची खो आये।

आराम से पैदल चल कर करीब आधे घंटे बाद एत्मादपुर पहुंचा। सभी लोग खड़े थे तथा कोई टैक्सी देख रहे थे कि टुंडला जाने पर शायद गाड़ी मिल जाये और अटैची मिल

जाए। इतने में क्या देखते हैं कि आश्रम से जीप आ रही है उसमें बैठे भाइयों से जय गुरुदेव हुई। भाइयों ने पूछा इतनी सवेरे कहां जा रहे हो तो इन्होंने बताया महाराज जी ने आज्ञा दी कि एत्मादपुर से सब्जी लाओ। महाराज जी से उन लोगों ने कहा कि महाराज जी इतनी जल्दी सब्जी नहीं मिलती तो महाराज जी ने पुनः आज्ञा दी कि तुम जल्दी एत्मादपुर जाओ। सभी भाइयों ने जीप वाले भाइयों को अटैची के बारे में घटना बताई तथा निवेदन किया कि टूंडला में ट्रेन पकड़नी है जल्दी से भाइयों के साथ चले जाओ। मैं अन्य भाइयों के साथ जीप में बैठकर टूण्डला स्टेशन पहुंचा गाड़ी खड़ी थी। भाईयों ने गाड़ी के कई डिब्बों में अटैची देखी तो एक डिब्बे में अटैची मिल गई। खुशी–खुशी अटैची लेकर आये।

गुरुदेव भगवान की कृपा से इतना समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् टूण्डला पर गाड़ी खड़ी रही तथा टूण्डला स्टेशन जाने की व्यवस्था बनाकर अटैची मिलवा दी।

शुभ–सूचना

पावन पर्व गुरु पूर्णिमा 19 जुलाई 2016

हर्ष का विषय है कि श्री सिद्ध गुफा संवाई में परम्परागत रूप से गुरु–पूर्णिमा का पावन पर्व 19 जुलाई 2016 दिन मंगलवार को मनाया जायेगा। परम्परा के अनुरूप गुरु पूर्णिमा के पश्चात् 21 से 31 जुलाई 2016 तक रुद्राभिषेक अनुष्ठान का कार्यक्रम चलेगा। दिनांक 31 जुलाई 2016 को पूर्णाहुति होगी।

क्या योगासन वैज्ञानिक पद्धति है ?

— श्री विजय दीक्षित (सम्पादक—चाणक्य विचार)

जी हाँ! योग जीने की कला है और योगासन एक वैज्ञानिक पद्धति। यही एक ऐसा व्यायाम है जो हमारे आंतरिक शरीर पर प्रभाव डालता है। शरीर और मन का स्वस्थ रहना हमारे अंदर के अंगो—हृदय, फेंफड़े, पाचन—संस्थान, ग्रंथियों, मस्तिष्क, नाड़ियों आदि के स्वस्थ व सक्रिय रहने पर निर्भर करता है। यदि अंदर के अंग सक्रिय हैं, शरीर की प्रतिशो—धात्मक शक्ति काम कर रही है तो दवाई से भी काम लिया जा सकता है, नहीं तो वह भी अपना विष छोड़ जाती है और रोगी को और कई नये रोग दे जाती है।

शरीर के अंदर की शक्ति को जगाने का काम योगासन व अन्य योग क्रियाएँ कर सकती हैं। योगासन करते समय हम अपने शरीर को तोड़ते—मरोड़ते हैं।

शरीर को तानते और ढीला करते हैं, जिससे हमारी रक्त—नलिकाएं साफ व शुद्ध होती हैं, जिससे हृदय को सारे शरीर को शुद्ध रक्त पहुँचाने और विकारयुक्त को वापस हृदय में लाने में सुविधा होती है। हृदय 24 घण्टे में 8 हजार लीटर रक्त शरीर में पम्प करता है व इतने ही विकारयुक्त रक्त को वापस लेता है और उसे शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेजता है।

शुद्ध होकर रक्त वापस हृदय में आता है। यह 15 सेकंड का चक्र, जब तक इंसान जीवित है, चलता रहता है।

हम दिन—भर काम करते हुए थक जाते हैं, तो आराम करते हैं, रात को छह या आठ घंटे सोते हैं परन्तु हृदय तथा फेफड़े तब भी काम करते रहते हैं। वे आपके अधीन नहीं हैं। आप उन्हें आराम करने के लिए कह भी नहीं सकते। हृदय को भी आराम चाहिए और उसमें आराम देने का केवल एक ही तरीका है कि रक्त—नलिकाओं को साफ रखा जाये ताकि वे सुविधापूर्वक सारे शरीर में रक्त—संचालन कर सकें तथा शरीर का दूषित रक्त फेंफड़ों में शुद्ध होने के लिए भेज सकें, साथ ही, यह काम उसे धक्के लगाकर न कराना पड़े। जहाँ शुद्ध रक्त जायेगा। वे अंग पुष्ट होंगे, सक्रिय रोगमुक्त होंगे। परन्तु आज हृदय रोग ही सबसे अधिक हो रहा है। हृदय को धक्का लगाकर काम करना पड़ रहा है, जिससे न तो शुद्ध रक्त शरीर के हर अंग तक पहुँचता है और न वहाँ से विकार निकल पाता है।

फलस्वरूप व्यक्ति रोगी और तनाव से भरता जा रहा है।

योगासन व प्राणायाम से हमारी रक्त–नलिकाएँ शुद्ध हो जाती हैं, फेंफड़े खुल जाते हैं, मांसपेशियों में लचक आ जाती है, जिससे उनके फैलने और सिकुड़ने की शक्ति बढ़ जाती है, उनकी अधिक आक्सीजन ले पाने की क्षमता बढ़ जाती है और वे शरीर के विकार को जलाकर कार्बन डाईआक्साइड गैस के रूप में बाहर कर पाते हैं। फेंफड़ों में 16 से 18 करोड़ छिद्र हैं जिनमें रक्त आकर भरता है। इसकी शुद्धि आक्सीजन से होती है, जितनी अधिक आक्सीजन हम ले पायेंगे, वह फेंफड़ों के अंतिम छिद्रों तक जायेगी और उतना ही अधिक रक्त शुद्ध होगा। जितना अधिक रक्त शुद्ध होगा, विकारमुक्त होगा, उतनी अधिक उसकी दौड़ बढ़ जायेगी और हृदय को उसे सारे शरीर में पहुंचाने में सुविधा होगी। योगासनों से हम अपने शरीर की सफाई करते हैं। उसे अनुशासित करते हैं।

प्रतिदिन नियमित रूप से योगासन करने से शरीर के विकारमुक्ति के चारों मार्ग–नासिका, त्वचा, लिंग और गुदा सक्रिय रहते हैं, विकार शरीर में रुकता नहीं, शरीर सक्रिय व स्वस्थ रहता है और मन शांत रहता है।

योगासनों से हम अपने पाचन संस्थान को स्वस्थ करते हैं, पाचक रस पूरी तरह से निकलते हैं, जिससे भूख लगती है, क्लोम ग्रंथि सक्रिय होती है, जिससे शरीर को आवश्यक शक्ति मिलती है और वह रोगों से अपने को बचाने में सक्षम रहता है।

योगासन ही एक ऐसा व्यायाम है, जिससे रीढ़ की हड्डी में लचक पैदा होती है, जिससे शक्ति के केन्द्र–चक्र प्रभावित होते हैं। हमारा मेरुदंड 26 मोहरों (हड्डियों) के जोड़ से बना है। विज्ञान मेरुदंड को तीन भागों में विभाजित करता है। ऊपर का भाग जो गर्दन से जुड़ा है उसे 'सर्विकल रिजन' कहते हैं। इसमें सात मोहरें होती हैं। बीच का भाग जो पसलियों से जुड़ा है जिसमें 12 मोहरें होती हैं, 'डोरसिल रिजन' कहलाता है। नीचे के भाग को 'लंबर रिजन' कहते हैं, उसमें भी 7 मोहरें होती हैं।

सर्विकल रिजन की रचना इस प्रकार की होती है कि हम अपनी गर्दन को आगे–पीछे, दाएँ–बाएँ मोड़ सकते हैं। रीढ़ की मोहरों की बनावट इस प्रकार की है कि इनके दोनों ओर छेद होता है और ये एक–दूसरे में फंसी होती हैं। जहाँ एक मोहरा दूसरे मोहरे पर बैठता है वहां गद्दीनुमा शौकर होते हैं, जो झटकों व चोटों को सहने की क्षमता रखते हैं। इससे शरीर के दूसरे अंग प्रभावित नहीं होते। मेरुदण्ड के बीच से सुषुम्ना नाड़ी जाती है।

योग में सुषुम्ना का नाम महत्वपूर्ण है, सुषुम्ना नाड़ी को जाग्रत करने की बात कही गई

है, इसी सुषुम्ना नाड़ी पर शक्ति के केन्द्र चक्रों की कल्पना की गई है, जिनके प्रभावित होने से व्यक्ति को विभिन्न उपलब्धियां प्राप्त होती हैं और वह तनावमुक्त होकर आनंदित रहता है। सुषुम्ना नाड़ीमण्डल का वह भाग है जो कपाल के पीछे महाछिद्र से प्रारम्भ होकर मेरुदंड के साथ उसके अंतिम मोहरे से ऊपर वाले मोहरे तक जाता है। सुषुम्ना कुछ बेलनाकार और रस्सी के समान होती है। इसके अगले भाग पर मध्यरेखा में एक आवरण–सा होता है। पिछला भाग भी मध्यरेखा में दबा रहता है तथा दोनों तरफ से 31 जोड़े नाड़ियां निकलती हैं। इसके बाएँ भाग को इड़ा नाड़ी मण्डल और दाएँ भाग को पिंगला नाड़ी मंडल कहते हैं। इसका सीधा संबंध नासिका की इड़ा (चंद्र नाड़ी) और पिंगला (सूर्य नाड़ी) से होता है।

सुषुम्ना नाड़ी और उससे निकले नाड़ी सूत्रों द्वारा ही मस्तिष्क सूचनाएँ प्राप्त करता है और सारे शरीर पर नियंत्रण प्राप्त करता है। नाड़ी सूत्र टेलीफोन के तारों के समान काम करते हैं। जिस प्रकार तारों द्वारा समाचार शरीर के एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं वैसे ही जीवित तारों द्वारा समाचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं। मस्तिष्क शरीर पर राज्य करता है, नाड़ीसूत्र उसके दूत हैं, मस्तिष्क की आज्ञा शेष अंगों तक इन्हीं तारों द्वारा पहुँचती है, जैसा कि हमको अनुभव होता है कि बहुत गर्मी है, यहां बहुत सर्दी है अथवा बहुत ठंडी हवा चल रही है आदि। यही नहीं, शरीर का सारा कार्य मस्तिष्क इन्हीं नाड़ीसूत्रों द्वारा संचालित करता है।

योगासनों से हमारा मस्तिष्क तथा सम्पूर्ण नाड़ीमण्डल शिथिल व सक्रिय होता है। योगासन धीरे–धीरे करने वाली क्रियाएँ हैं। आसनों में हम अपने शरीर को पूरी तरह तानते व खींचते हैं और पूर्ण स्थिति तक जाते हैं। फिर शरीर को ढीला छोड़ते हैं, शवासन करते हैं, ऐसा करने से नाड़ियाँ तनावमुक्त और कार्यशील होती हैं। प्राणायाम से भी हमारी नाड़ियाँ शुद्ध व शांत होती हैं, मन स्थिर होता है, आत्मविश्वास बढ़ता है।

जब शरीर स्वस्थ होगा, मन शांत होगा, तभी भीतर की शक्तियाँ जागेंगी, चक्र खुलेंगे, मन एकाग्र होगा। जब मन एकाग्र होगा, तो काम करने की शक्ति बढ़ जायेगी।

काम में सफलता मिलेगी, समस्याओं से भागेंगे नहीं, उनका सामना करने की शक्ति आ जायेगी। व्यक्ति सकारात्मक सोचने–विचारने लगेगा। कार्यशक्ति सही दिशा में बहने लगेगी, जीवन का आमूल रूपांतरण हो जायेगा। जब काम करने की दिशा ही ठीक हो जायेगी और काम में सफलता मिलने लगेगी तो मन प्रसन्नता से भर उठेगा, यदि वह प्रसन्नता बनी रही तो आनन्द का रूप ले लेगी। आनन्द का ही दूसरा नाम परमात्मा है।

आश्रम समाचार

श्री सिद्ध गुफा संवाई पर विशेष योग शिविर सम्पन्न

श्री सिद्ध गुफा संवाई आश्रम पर अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस 21 जून के अवसर पर निरोग और तनाव मुक्त जीवन हेतु 21 से 27 जून 2016 तक विशेष योग शिविर आयोजित किया गया। प्राचीन योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा के प्रांगण में प्रातः आरती और गीता पाठ के तुरन्त बाद योगासनों की कक्षा प्रारम्भ हो जाती थी।

योग शिविर में **''जीवन तत्व साधन''** के अभ्यास के साथ-साथ अनेक प्रकार के योग आसनों, सूक्ष्म व्यायाम, नेति व धौती आदि योगिक क्रियाओं का प्रदर्शन व अभ्यास कराया गया। विभिन्न प्रकार के प्राणायामों की जानकारी और अभ्यास से लोगों को लाभ हुआ।

योगाचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज द्वारा शिविर में प्रतिदिन व्याख्यान के माध्यम से योग के विभिन्न आयामों, अष्टांग योग, ध्यान योग की महिमा, प्रभु श्री राम लाल जी महाराज तथा गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज के पावन व प्रेरणादायी प्रसंगों से साधकों में ऊर्जा का संचार हुआ। योगाचार्य जी ने इन साधनों का नियमित और निरन्तर रूप से अभ्यास करने पर बल दिया।

योगाचार्य डॉ. दासलाल जी ने शिविर में विभिन्न दिनों में विस्तार से बताया कि योग व्यक्ति के शरीर, मन, भावना और ऊर्जा के स्तर पर कार्य करता है। योग प्राचीन भारतीय परम्परा है। योग मात्र व्यायाम ही नहीं है, योग हमारी जीवन शैली में परिवर्तन लाकर अन्दर से भी जागरूकता उत्पन्न करता है और व्यक्तित्व में निखार लाता है। यह जीवन के विभिन्न पहलुओं में समन्वय लाता है। योग स्वस्थ जीवन की कला और विज्ञान है।

योगाचार्य जी ने पतंजलि जी के योग सूत्रों को भी सरल और हृदय ग्राही शब्दों में समझाया। विभिन्न कष्टकारी बीमारियों का योग द्वारा इलाज पर भी विस्तृत चर्चा हुई।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र में कष्टकारी रोगों की निःशुल्क चिकित्सा परम्परागत रूप से की जा रही है। इसी परम्परा में योग साधनों से रोगों की निवृत्ति हेतु यह शिविर आयोजित किया गया। शिविर में हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि के

विभिन्न नगरों से आये लोगों ने श्रद्धापूर्वक भाग लिया। बड़ी संख्या में आसपास के क्षेत्रों से भी लोगों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। विशेष रूप से युवावर्ग के लिए शिविर प्रेरणादायी रहा। युवाओं ने विशेष रुचि दिखाई।

इस योग शिविर की कवरेज इलेक्ट्रानिक एवं प्रिन्ट मीडिया ने स्वेच्छा से प्रसारित की। अनेक लोगों ने दूरभाष द्वारा तथा मिलकर भी ऐसे सार्थक, प्रभावी तथा कल्याणकारी योग शिविर के आयोजन पर डॉ. दास लाल जी को बधाई दी और ऐसे योग शिविरों के समय–समय पर आयोजन कराने की आवश्यकता बताई।

इस विशेष शिविर के अन्त में 27 जून को योगाचार्य जी ने साधकों की जिज्ञासाओं के समाधान दिये और आशीर्वचन के साथ शिविर सम्पन्न हुआ। ज्ञातव्य है कि सिद्ध गुफा संवाई आश्रम पर प्रतिदिन योग की कक्षाएं चलती हैं।

योग सिद्ध आश्रम पुरानी मण्डी में विशाल योग शिविर

प्रेषक–हेमराज चोपड़ा, मण्डी

योग सिद्ध आश्रम मण्डी में प्रतिवर्ष योग शिविर का आयोजन किया जाता है। इस बार 7 जून से 11 जून 2016 तक पांच दिवसीय विशाल योग शिविर ब्र. डा. दास लाल शर्मा की अध्यक्षता में उल्लासपूर्वक व धूमधाम से मनाया गया। इस शिविर की विशेषता यह रही कि बड़ी संख्या में स्थानीय लोगों के अतिरिक्त सुदूर क्षेत्रों से आए भक्तों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया। लखनऊ से श्री अनिल तिवारी कृषि उपनिदेशक, आगरा से श्री दिनेश शर्मा, जयपुर से श्री पुरुषोत्तम शर्मा व अन्य व्यक्ति, हरियाणा से पचासों व्यक्ति व इसी प्रकार दिल्ली, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थानों से आए सैकड़ों व्यक्तियों ने इस शिविर में भाग लिया। इन सभी की उपस्थिति एवं सहयोग से यह कार्यक्रम अति सुन्दर बन गया–

गंगापुर सिटी (राजस्थान) से भी रामनाथ शर्मा सहित 25 साधक कार्यक्रम में सम्मिलित हुए।

योग कार्यक्रम प्रातः 5.30 बजे आरती, ध्यानाभ्यास से प्रारम्भ होता था। 5.30 बजे

योगाचार्य जी प्रभु दरबार में उपस्थित लोगों को स्वयं ध्यान में बैठाते थे।

सैंकड़ों व्यक्तियों को एक साथ प्रभु दरबार में ध्यानस्थ देखकर मन अतीव आनन्द से भर जाता था। बरबस पुरातन समय के ऋषि मुनियों का स्मरण हो जाता था क्योंकि ऐसे स्वर्गीय दृष्य उन्हीं के आश्रमों में सम्भव थे। आनन्द विभोर होकर साधक ध्यान योग का आनन्द लेते रहे। यह एक विशेष बात इस आश्रम की है। आश्रम के साथ-साथ व्यासा नदी बहती है। इसकी कल-कल ध्वनि मन को एकाग्र करने व ध्यान लगाने में विशेष रूप से सहायक होती है। 400-500 साधक इसमें सम्मिलित होकर ध्यान योग का आनन्द लेते रहे।

प्रात: 6.30 से 8 बजे का समय योगासनों व प्राणायाम का रहता था। योगासन आचार्य जी स्वयं अपनी देखरेख में करवाते रहे। सर्वप्रथम जीवन तत्व साधन और उसके बाद योगासनों का लाभ एवं आसन करने की सही विधि बतलाई गई। पुरुष वर्ग आचार्य जी एवं स्त्री वर्ग श्रीमति विद्या कौशल की देखरेख में अभ्यासरत रहे। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी वीरेन्द्र स्वरूप द्वारा प्राणायाम का अभ्यास कराया गया। जिसमें प्राणायाम करने की सही विधि, उनसे होने वाले लाभ विस्तारपूर्वक समझाए गए।

प्रात: 9 से 11 बजे का समय गीता पाठ का रहता था। योगाचार्य जी गीता पाठ करते व अन्य साधकों से भी करवाते रहे। उन्होंने एक-एक श्लोक का गहराई से अध्ययन करवाया व उसमें छिपे रहस्य को समझाया। उन्होंने बताया कि श्रीमद्‌भगवत गीता केवल एक धार्मिक पुस्तक ही नहीं है बल्कि इसमें जीवन जीने की कला के साथ-साथ आध्यात्मिक जगत से जुड़ने की विद्या का भी बखान है। अर्जुन के मोह त्यागकर युद्ध करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने किस प्रकार प्रेरित किया, इसे श्री आचार्य जी ने विस्तार से समझाया। अर्जुन के सभी संशयों का निवारण करने के पश्चात् श्रीकृष्ण जी ने उसे कह दिया कि अब जो तेरी इच्छा है वही कर। अर्जुन का अब मोह नष्ट हो चुका था। इसीलिए उसने कहा-

''नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गत सन्देहः करिष्ये वचनं तव।।

अब उसने पूर्ण रूप से अपने आप को उनके हवाले कर दिया। पूर्ण समर्पण कर दिया। आचार्य जी ने श्रीमद्‌भगवद् गीता के गूढ़ रहस्यों को बड़े सरल शब्दों में समझाया। महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग के बारे में विस्तार से चर्चा की। इसके विभिन्न अंगों में से ध्यान को बहुत महत्व दिया। उन्होंने स्पष्टता से कहा कि चाहे पापों का पहाड़ ही सम्मुख क्यों न

हो, ध्यान योग की साधना से वह भी नष्ट हो जाता है। उन्होंने पुनः दोहराया कि जब तक शरीर स्वस्थ है, उपयुक्त साधन उपलब्ध हैं, तभी योग साधना में डट जाना चाहिए और गुरु आज्ञानुसार प्रातः 5 से 7 बजे तक गुरुमंत्र जाप और 7 से 8 बजे तक ध्यान करना चाहिए। हमारे सभी कष्टों का निराकरण हो जायेगा। नहीं तो जब समय बीत जाएगा, फिर कुछ भी नहीं कर पाओगे, यह दुर्लभ मनुष्य जन्म व्यर्थ ही चला जायेगा।

सायं काल 4 से 6 बजे का समय भजन संकीर्तन का रहता था। इसमें स्थानीय भजन गायकों के अलावा बनारस से आए प्रदीप एवं उनकी मंडली तथा कुराना से आए राजवीर आदि के भजन अत्यन्त भावपूर्ण व कर्ण प्रिय रहे। कई व्यक्तियों को इनके भजनों के दौरान ध्यानस्थ होते देखा गया। इसके पश्चात् 8 बजे तक का समय श्री योगाचार्य जी द्वारा साधकों की शंका समाधान एवं योग विषयक व्याख्यान का रहता था। आचार्य जी ने ध्यान योग पर विशेष रूप से चर्चा की।

अंतिम दिन विशाल भंडारे का आयोजन था जिसमें हजारों व्यक्तियों ने आकर भण्डारे को प्रभुजी के प्रसादरूप में ग्रहण कर अपने को धन्य किया।

इस प्रकार 11 जून 2016 को इस योग शिविर का समापन हुआ। समापन अवसर पर श्री हरिसिंह ने सभी का आभार प्रकट किया। सभी, आचार्य जी को 12 जून की प्रातः 5 बजे भावभीनी विदाई देकर अपने-अपने स्थान पर चले गये।

शोक समाचार

बड़े दुःख का विषय है कि हमारे पुराने गुरु भाई लखनऊ निवासी श्री रविन्द्र कुमार जौहरी का लम्बी बीमारी के बाद 4 जून 2016 को देहान्त हो गया है। वे गुरुदेव के लाड़ले बच्चों में से एक थे। इलाहाबाद-प्रयाग राज में प्रारम्भ में उन्हीं के घर पर विराजमान रहकर गुरुदेव जी पर्वों पर स्नान करते थे। बाद में कैम्प लगाना शुरू हुआ था। अब घर में उनके बच्चे हैं व पत्नी है। इस दुःख की बेला पर सिद्धयोग परिवार हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

श्री प्रभु जी उन्हें अपने चरणों में स्थान दें। वे होम्योपैथी के बड़े ही कुशल चिकित्सक भी थे।

शोकाकुल-

सिद्ध गुफा संवाई के समस्त साधकगण

योगिनी आनन्दमयी माँ

आनन्दमयी माँ अपनी दैवी प्रतिभा तथा विशिष्टता के कारण जनसाधारण को प्रभावित करती रहीं। संतों, विद्वानों, राजनीतिज्ञों का इनके यहाँ आवागमन जारी रहा। जमनालाल बजाज माँ के प्रिय पुत्र थे। जमनालाल बजाज की जबानी माँ की प्रशंसा सुनकर महात्मा गांधी ने अपने यहाँ उन्हें बुलाया था। उस समय वहाँ डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, सरदार पटेल, आचार्य कृपलानी आदि महारथी थे। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अलावा जवाहरलाल नेहरू, इन्दिरा गांधी अक्सर उनसे आशीर्वाद लेने आते थे। इसे इन पंक्तियों के लेखक ने भी देखा है। आनन्दमयी माँ के निधन के समय इन्दिरा गांधी उन्हें सम्मान देने के लिए हरिद्वार गयी थीं।

आनन्दमयी माँ में एक विशेषता यह थी कि वे दूसरों के मन की इच्छा, कल्पना को आसानी से समझ लेती थीं। कहीं कोई दुर्घटना होने पर उसका आभास उन्हें हो जाता था जिसकी विधिवत् सूचना जनसामान्य को काफी देर बाद प्राप्त होती थी।

एक बार अमूल्यकुमार दत्तगुप्त की पत्नी ने माँ को टसर की साड़ी देकर प्रणाम किया। उनकी इच्छा थी कि इस साड़ी को माँ कम-से-कम एक बार पहन लें, पर उन्हें यह देखकर कष्ट हुआ कि माँ ने उसे स्पर्श तक नहीं किया। उसे उठाकर गुरुप्रियादेवी ने रख दिया।

इस घटना के 2-3 माह बाद माँ का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। इस अवसर पर लोग साड़ियाँ भेंट में दे रहे थे। विभूतिचरण गुह ठाकुरता की पत्नी ने भेंट दी अपनी साड़ी को जबरन पहनाया। लाल साड़ी में माँ साक्षात् भगवती जैसी लग रही थीं। इस समारोह में अमूल्यबाबू की पत्नी भी बैठी थीं। वह मन ही मन विभूतिचरण की पत्नी के सौभाग्य की प्रशंसा करने लगीं। माँ ने मेरी दी साड़ी पहनी नहीं। इस पर मन में कष्ट अनुभव करती रहीं। तभी माँ ने उससे कहा-''तुमने जो टसर की साड़ी दी थी, उसे दो बार पहन चुकी हूँ। इसके बाद जिसके भाग्य में थी, उसे दे चुकी हूँ।'' यह बात सुनते ही अमूल्यबाबू की पत्नी शर्म से गड़ गयी। खुशी से उसकी आँखें भर आयीं।

इसी प्रकार एक दिन आश्रम में प्रमथबाबू, नगेनबाबू और अमूल्यबाबू बैठे थे। इतने में एक फरवीवाला आया। सिर पर बोझा उठाये वह चारों ओर खरीदने वाले ग्राहकों की तलाश करने लगा।

तभी माँ ने कहा-''फरवीवाला जिस प्रकार अपने बोझ को ढो रहा है, संसार का बोझ

उसी प्रकार तुम लोगों को ढोना चाहिए।''

एकाएक माँ ने प्रमथबाबू से कहा, ''पिताजी, मुझे फरवी खिलाइये।''

प्रमथबाबू ने कहा—''यह कौन–सी बड़ी बात है। तुम जितना फरवी खा सकती हो, खा लो।''

माँ ने कहा—''इसकी सारी फरवी खरीद लो।''

फरवीवाला ढाई रुपये में सारा माल बेचने को तैयार हो गया। प्रमथबाबू रुपये देने लगे तभी माँ ने कहा—''पूरी कीमत तुम्हें देने की जरूरत नहीं। आधी तुम दो और आधी नगेन दे।''

प्रमथ और नगेन के अलावा वहाँ तीसरे व्यक्ति अमूल्यबाबू बैठे थे। जब अमूल्यबाबू का नाम नहीं लिया गया तब उन्हें संतोष हुआ, क्योंकि उस समय उनकी जेब में एक पैसा भी नहीं था। अगर माँ इनका नाम साझेदारी में लेतीं तो मुश्किल का सामना करना पड़ता। लेकिन एक कहावत है—होनी होकर रहती है। वही हुआ।

नगेनबाबू ने कहा—''माँ, तुमने हम दोनों को कीमत देने के लिए कहा, पर अमूल्यबाबू को कुछ नहीं कहा।''

माँ ने कहा—''ठीक है। तुम तीनों मिलकर कीमत चुका दो। मुझे आपत्ति नहीं है।''

एकाएक अमूल्यबाबू की ओर देखती हुई माँ ने नगेनबाबू से कहा—''तुमने अमूल्यबाबू को कीमत देने को कहा। जरा उससे पूछो कि उसके पास पैसे हैं?''

भोलानाथजी अब तक चुपचाप बैठे थे। शायद उन्हें विश्वास था कि अमूल्यबाबू यहाँ खाली हाथ नहीं आये होंगे। उन्होंने माँ के अनुमान को गलत साबित करने की गरज से तथा आनन्द लेने के लिए कहा—''क्या आपके पास पैसे नहीं हैं?''

अमूल्यबाबू ने कहा—''नहीं।''

भोलानाथ ने पुनः पूछा—''रुपया है शायद?''

अमूल्यबाबू ने कहा—''नहीं, कुछ भी नहीं है।''

माँ हँसते–हँसते लोटपोट होने लगीं, बोलीं—''जब मैंने सही बात कही तो अन्य लोग भी हँस पड़े। शायद भोलानाथजी अप्रतिभ हो गये।''

आनन्दमयी माँ अन्य संतों की तरह अपने यहाँ आये भक्तों तथा जिज्ञासुओं को नाम जपने की सलाह देती थीं। इस सम्बन्ध में एक बार एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया—''नाम जपना तो समझता हूँ। नाम होना कैसा होता है? क्या होने पर यह समझा जाए कि नाम हो रहा है?''

माँ ने कहा—''जब देखोगे कि तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध नाम अपने–आप होता जा रहा है, जब देखोगे कि किसी काम के लिए अन्यत्र जाना है, पर नाम तुम्हें जाने नहीं दे रहा है,

जब देखोगे कि नाम तुम्हारी इच्छा, कर्म-शक्ति पर अधिकार जमाये बैठा है तब समझ लेना नाम हो रहा है। इसी प्रकार ध्यान करना एक बात है और ध्यान होना अलग बात है। लोग ध्यान करने का प्रयत्नमात्र करते हैं। लेकिन जब सचमुच ध्यान होता है तब समझ में आ जाता है कि इन दोनों में कितना अन्तर है।"

प्रश्न-"मेरे गुरुभाई जब ध्यान करते थे तब उन्हें घंटा-ध्वनि और वंशी-ध्वनि सुनाई देती थी। ज्योति भी दिखाई देती थी। मैंने उससे पूछा था कि ये सब ध्वनियाँ कहाँ से आती हैं, बता सकते हो? उत्तर में उसने कहा था कि मैंने केवल ध्वनि सुनी है, कहाँ से आती है, पता नहीं। इन ध्वनियों का क्या मतलब है?"

माँ-"बता रही हूँ, जब कुण्डलिनी-शक्ति जागृत होती है तब नाभिमूल में जितनी ग्रंथियाँ हैं, वे खुलने लगती हैं। जब ग्रंथियाँ खुलने लगती हैं तब विभिन्न प्रकार के शब्द सुनाई देते हैं और ज्योति दिखाई देने लगती है। एक भी ग्रंथि-भेद होने पर शब्द सुनाई देता है। इसे अनाहत-ध्वनि कहते हैं। यह हमेशा होता रहता है, पर जब तक चित्त स्थिर नहीं होता तब तक यह सुनाई नहीं देती। यही संसार की विभिन्न ध्वनियों की समष्टि है। जैसे शंख, घंटा, घड़ियाल आदि की आवाजें भिन्न-भिन्न हैं, पर एक साथ इन्हें बजाने पर एक प्रकार की आवाज होती है, उसी प्रकार अनाहत-ध्वनि होती है। संसार में ऐसी कोई भी ध्वनि नहीं है जिसके साथ इसकी तुलना की जा सके जब कि संसार की सभी ध्वनियाँ इसी ध्वनि से उत्पन्न हुई हैं। इसी प्रकार अन्य एक ग्रंथि-भेद होने पर ज्योति-दर्शन होता है। यह ज्योति अपार्थिव है। जगत् के किसी भी प्रकाश से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। रूप के बारे में यही बात लागू होती है। ग्रंथि-भेद के साथ ही साथ लोगों के संस्कार के अनुसार नाना रूप-दर्शन होते हैं। फिर समस्त रूप में लय हो जाता है। संसार की सभी चीजें एक मूल से उत्पन्न होती हैं। ग्रंथि-भेद होने पर ही सब समझ में आ जाता है। जिनकी समस्त ग्रंथियों का भेद हो गया है, वे ही जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारणों को समझ पाते हैं। जिनका आंशिक भेद हुआ है, वे समझ नहीं पाते। इसीलिए पिताजी कहते हैं कि कहाँ से आवाज आ रही है, समझ नहीं पाता। केवल शब्द सुन पाते हैं।"

आनन्दमयी माँ न तो पढ़ी-लिखी थीं और न उन्होंने धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया था, पर वे उच्च स्तर के संतों और विद्वानों के प्रश्नों का बराबर उत्तर देती रहीं। एक बार ढाका में दार्शनिकों का सम्मेलन हो रहा था।

प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री महेन्द्र सरकार ने प्रश्न किया-"माँ, आपने दर्शन-शास्त्र अध्ययन किया है?"

"क्यों पिताजी?"

"आपसे जितने सवाल किये गये और आपने जो उत्तर दिये, वे भी दर्शन-शास्त्रों से

मिल गये यानी आपका उत्तर दर्शन–शास्त्र के योग्य था। यह कैसे संभव हुआ, यही जानने की इच्छा है।''

यह सुनकर माँ अवाक् रह गयीं। कैसे वह ऐसी बातें कह गयीं। वेद, वेदान्त, दर्शन–ग्रंथों को पढ़ने को कौन कहे, देखा भी नहीं है।

माँ ने कहा–''पिताजी, एक विराट ग्रंथ है। सभी प्रकार के ज्ञान उसके अन्तर्गत हैं। जिसे उस ग्रंथ का पता लग जाता है, उसके लिए आप लोगों के ग्रंथों के विषय को जानना बाकी नहीं रहता।''

यह बात सुनते ही पंडित–मण्डली निःस्तब्ध रह गयी। वे समझ गये कि माँ को दैवी प्रतिभा प्राप्त है। बातचीत के सिलसिले में खण्ड–अखण्ड की चर्चा चलने पर एक जिज्ञासु ने पूछा–''जब तुम अखण्ड रूप में रहती हो तब क्या हम लोगों को देख पाती हो?''

माँ ने गंभीर होकर कहा–''सब बातें सभी के सामने नहीं कहती। सभी बातें लोगों के सामने मुँह से नहीं निकलती। तुमने प्रश्न किया है, इसलिए निकल रहा है। शायद मेरी बातें तुम समझ सकोगे। तुमने खण्ड रूप में जो चर्चा की, वह भी मैं ही हूँ जब कि मैं खण्ड नहीं हूँ। तुमने अखण्ड के बारे में जो कहा, वह भी मैं ही हूँ, पर मैं अखण्ड नहीं हूँ। मैं असीम भी नहीं हूँ, सीमा के अन्तर्गत बद्ध नहीं हूँ। मैं युगपत् दोनों ही हूँ। अगर मुझे खण्ड कहोगे तो मुझे सीमा के भीतर बद्ध करना हुआ। लेकिन मेरी सीमा नहीं है, बन्धन नहीं है, दूसरी ओर सभी प्रकार के बन्धन हैं। मैं खा रही हूँ, घूम रही हूँ, यह सब मेरे खण्ड भाव हैं, इसलिए मैं ससीम हूँ और दूसरी ओर मुझे आहार–निद्रा की आवश्यकता नहीं है, अतः मैं सीमा–शून्य हूँ।''

आनन्दमयी माँ का यह नाम सार्थक रहा। कोई भी उनके निकट जाता तो सहज ही आकृष्ट हो जाता था। उनके चेहरे से सर्वदा प्रसन्नता की छटा प्रस्फुटित होती थी। श्री रतनलाल जोशी के शब्दों में–''उनका मुखमण्डल पूर्णचन्द्र की चाँदनी में आभासित था। हमारे मित्रों को सहसा ऐसा अनुभव हुआ कि आसपास आकाश की तरह सब शून्य है, न कोलाहल है, न भीड़भाड़। माँ की संपूर्ण आकृति भी नहीं है, केवल उनका मुख है, करुणा का सुन्दर कलश। आनन्दमयी की आँखों से ममता की किरणें निखर–निखरकर हमारे हृदय–मानस में आलोक की ऊर्मियों की भाँति तरंगित हो रही थीं।''

जस्टिस आयंगरजी जो इस समय मौजूद थे, उन्होंने कहा–''सन्तों की करुणा के मुझे कई अनुभव हैं। महर्षि रमण के यहाँ चिन्ताएँ लेकर जाता था और उनके देखने मात्र से सारी चिन्ताएँ आत्मा के आनन्द में परिणत हो जाती थीं। आज भी मुझे माँ के सान्निध्य में ऐसी ही अनुभूति हो रही है। बड़ा हल्कापन महसूस हो रहा है। लगता है, जैसे मैं कहीं हूँ ही नहीं।''

डॉ. परुलेकर ने इस बात को सुनने के बाद कहा—"मैं अलौकिकता में विश्वास नहीं करता। चमत्कारों को मैं आँख में धूल झोंकनेवाली धूर्तता मानता हूँ। किन्तु आनन्दमयी माँ तो संसार के सारे स्पर्शों से परे, आत्मानन्द में लीन सन्त विभूति हैं। उनके सामीप्य में बड़ी शक्ति है। हमारे एकनाथ महाराज ने कहा है कि आनन्द की तरंगों से मन के बोझ को हल्का करना हो तो संतों के चरणों में बैठना चाहिए। माँ के समीप आकर मैंने पाया कि जैसे बुझा हुआ चैतन्य फिर से उद्दीप्त हो उठा है।"

डॉ. परुलेकर की बातों का समर्थन परोक्ष रूप में माँ ने एक भक्त के प्रश्न में किया है। भक्त ने पूछा—"माँ, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी ने कहा है कि आधी रात ही भजन–साधन का वास्तविक समय है, क्योंकि इसी वक्त महापुरुषगण गमनागमन करते हैं। अगर इस वक्त कोई भक्त जप–तप करता है तो वे लोग उसकी सहायता करते हैं।"

माँ ने कहा—"प्रत्येक समय का एक विशेष भाव है और ये भाव पात्र–भेद के अनुसार कार्य करते हैं। जैसे सबेरे एक भाव तो शाम को दूसरा भाव। शाम के वक्त आम तौर पर मन शून्य रहता है और काफी स्थिर हो जाता है। फलतः इस समय नाम–जप करने का विधान है। इसी प्रकार मध्य रात्रि का एक विशेष भाव, साधन–भजन के लिए अनुकूल होता है। इसके अलावा इन भावों के आविर्भावों को अनुभव किया जा सकता है। विशेष गंध या नाम में विशेष आनन्द की उपलब्धि से महापुरुषों का सान्निध्य या साधु–प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है। अक्सर ऐसा होता है कि साधक जब अपने बच्चों को लेकर सोता रहता है तब महापुरुषों के आविर्भाव से बच्चे अचानक चौंक उठते हैं। पर साधकों के लिए डरने की बात नहीं है, कारण साधक के मन की स्थिति अगर भयभीत होने लायक रहती है तो महापुरुष दर्शन नहीं देते। जगत् का विधान इतना सुन्दर है कि भगवान् का कृपा–भांड सर्वदा उन्मुक्त रहता है। पात्रानुसार वह कृपा संचारित होती है। जिसका जितना अधिकार है, उतना वह ग्रहण करता है।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि बीसवीं शताब्दी की एक अद्भुत महिला संत आनन्दमयी माँ थीं। उन्होंने स्वयं अपने बारे में कहा है—"मैं स्वतः कोई भी कार्य अपनी इच्छा से नहीं करती और न कुछ कहती हूँ। मेरे भीतर से अन्तस्प्रेरणा ही सब कहती और करती है। मेरे भाव कुछ अलग किस्म के थे। भाव का खेल आरंभ होने पर शरीर के भीतर नाना प्रकार की क्रियाएँ आरंभ हो जाती थीं। उन दिनों मैं आहार नहीं करती थी, फिर भी शरीर काफी हृष्ट–पुष्ट था और सिंह की भाँति शक्ति थी। मैं आहार नहीं करती यह बात मेरा चेहरा देखकर कोई नहीं कह सकता था। अक्सर शरीर अकड़ जाता था। हाथ–पैर रक्त–शून्य हो जाते थे। प्रायः मुर्दे की तरह पड़ी रहती थी। अति अल्प आहार या अनाहार करते हुए काफी दिन गुजार चुकी थी। यह सब अपनी इच्छा से नहीं करती थी। सब कुछ हठयोग के

कारण होता था। इतना होते हुए भी घर-गृहस्थी का कोई काम बाकी नहीं रखती थी।"

इसके पूर्व गुरुप्रियादेवी का जिक्र किया गया है। गुरुप्रियादेवी को दीक्षा देने के कुछ दिनों बाद माँ ने उनसे कहा—"अब तुम्हें आगे से मुझे अपने हाथ से खिलाना पड़ेगा। न जाने क्यों मेरे हाथ अब खाने के लिए नहीं उठते। यह काम कर सकोगी न?"

गुरुप्रियादेवी ने कहा—"क्यों नहीं?"

इस बातचीत के बाद से गुरुप्रियादेवी उन्हें अपने हाथ से कौर बनाकर खिलाने लगी। माँ की इस आदत को देखकर भारत के कई जगह के लोग अवाक् रह जाते। कभी-कभी कोई प्रश्न कर बैठता—"क्या ये अपने हाथ से नहीं खा सकतीं?"

माँ कहतीं—"यह हाथ भी मेरा है और तुम्हारे पास जो है, वह भी मेरा है।"

लोग यह नहीं जान पाते थे कि इस क्रिया के पीछे क्या रहस्य है? एक बार रमणीमोहन चक्रवर्ती रात को खाट पर लेटते हुए बोले—"जरा मेरे पैर दबा दो।"

आनन्दमयी माँ उनके पैर दबाने लगीं। थोड़ी देर बाद उनका हाथ नीचे गिर पड़ा। रमणीबाबू ने पूछा—"दबाती क्यों नहीं?"

आनन्दमयी माँ ने कहा—"मेरे हाथ उठ नहीं रहे हैं। जाने क्या हो गया है। मैं जान-बूझकर ऐसा नहीं कर रही हूँ।"

ज्ञातव्य है कि तब तक रमणीबाबू अपनी पत्नी को ठीक से पहचान नहीं सके थे। अपने पति के बारे में माँ ने कहा है—"मुझ पर भोलानाथ की सतर्क दृष्टि थी। जिन दिनों वे परदेश में थे, उन दिनों विद्याकूट में रहते हुए मैं कब, कहाँ जाती हूँ, क्या करती हूँ, यह सब जानने के लिए गुप्तचर नियुक्त कर रखा था। मैंने कभी भोलानाथ की अवज्ञा नहीं की। कौड़ी खेलना मुझे अच्छा लगता था। भोलानाथ के मना करने पर मैंने खेलना बन्द कर दिया। इच्छा होने पर खेल सकती थी और भोलानाथ को पता तक ना चलता, पर मैंने ऐसा नहीं किया। मैं हमेशा भोलानाथ के आदेशों का पालन करती थी, पर भावावेश के समय गड़बड़ हो जाता था। घर से बाहर अगर निकलना हुआ तो कोई न कोई सुयोग देखकर बाहर निकल जाती थी। दरवाजे पर साँकल चढ़ा देने पर भी कमरे में इस कदर लोटने लगती कि मजबूर होकर दरवाजा खोलना पड़ता था। मेरे शरीर पर अलौकिक क्रियाएँ होती थीं। आसन पर बैठी हूँ, आसन सहित लट्टू की तरह घूम रही हूँ। यह सब इच्छा से नहीं किया जा सकता। उस समय भोलानाथ बाधा नहीं देते थे। एक बार उन्होंने कमरे में बन्द कर दिया था तब मैं फर्श पर लोटने लगी। हाथ की चूड़ियाँ फूट गईं। शरीर काँपने लगा और अन्त में लस्त होकर चुपचाप पड़ी रह गयी।

गुरुभक्ति

आचार्य ब्रह्मचारी बृजमोहन वशिष्ठ जी

आसक्ति जो छोड़ता,
वही योगी बन पाय।
कर्म योगी होता वही,
मन इच्छा फल नाय।
कर्त्तव्य कर्म जो करे
प्रभु सुमिरन मन माह
हरिद्वार वह पहुँचता,
यम भी रोके, नाय।
(नोट–हरिद्वार का अर्थ प्रभुधाम से है।)
गुरु भक्ति मन में बसे,
गुरु प्राणों के प्राण।
गरज उस को क्या पड़ी,
भजन करे भगवान।
सहजो बाई को देखिये,
अमीर खुशरो महान।
गुरु चरणों पर वारते,
तन मन धन कुर्बान।
अहिंसा, सत्य, असत्य, ब्रह्मचर्य को जान,
परिग्रह के वृत को मत छोड़ो नादान।
शौच, सन्तोष और तप को,
धारे जो सुजान।
स्वाध्याय कर नित्य ही,
सीखो प्राणीधान।
यह वृत ही महावृत है,
कहें पतंजलि भगवान।
दशों साधन जो करे,
बने दशरथ महान।
जो चाहता न हो कभी,
कण्ठ ऊपर के रोग।
नित्य नियम नेति करो,
यही साधन है योग।
सर्वोत्तान आसन कर,
नियम से तीन बार।
फिर अपने को समझो,
आसन को तैयार।
लोट फेर स्कन्द चालन,
तेज रख रफ्तार।
15 मिनट में होत है,
गिन लो एक हजार।
तीजा पग चालन करो,
नाभि चालन चौथी बार।
जानुप्रसार दोनों पग से,
कर लो तीन–तीन बार।
बाल मचलन बालध्यान करो,
नाड़ी संचालन पैर पसार।
उत्पेक्षण दोनों हाथ पैर से,
करलो तीन–तीन बार।
यह नौ आसन जीवन तत्व है।
कर लो नित्य वृद्धाय,
सब से सरल उत्तम यही,
मन में मत घबराय।
बच्चा वृद्ध और जवान जो,
कर ले या कोई नार,
जीवन स्वस्थ सुखी रहे,
मन उपजे प्रभु प्यार।

षट् दर्शनों में योग का महत्त्व

डॉ. ऋषिराम शर्मा, एम.एस–सी., पी–एच.डी., वाराणसी

संसार का प्रत्येक प्राणी केवल एक ही कार्य में व्यस्त है उसी की पूर्ति के लिये जीवन भर कोल्हू के बैल की तरह लगा रहने पर भी अपूर्णावस्था में ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है। यही सांसारिक जीवन का रहस्य है आप कहेंगे कि इस संसार में तो अनन्त प्राणी हैं अनन्त ही उनकी विचार धारायें हैं। **मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना:** के अनुसार अनन्त ही उनके कार्य कलाप हैं। और अनन्त ही उनके उद्देश्य हैं। या यह कहिये कि अनन्त विभिन्नता ही संसार का रूप है। किन्तु आप थोड़ा विचार करें तो व्यावहारिक जगत के सभी प्राणी अपने मन के अनुकूल पदार्थों को एकत्र करने और प्रतिकूल पदार्थों को हटाने में लगे हैं। और इन्हीं अनुकूलता और प्रतिकूलता की वृत्तियों का प्राणियों के अन्तःकरणों पर पड़ने वाला मायावी स्वरूप अनन्त विभिन्नता दर्शाता है। क्या कभी आपने इसका विश्लेषण एवं मनन किया है कि इस विभिन्नता रूप कार्य का अधिष्ठान रूप कारण कौन है? बस इसी ग्रन्थि के सुलझ जाने पर यही भोग विलास में फँसाने वाला दृश्य जगत मोक्ष का दाता बन जाता है।

सर्वप्रथम हमें कारण और कार्य के सम्बन्ध पर विचार करना है। वस्तुतः कारण ही कार्य का रूप धारण कर लेता है। किन्तु इस क्रिया में एक भ्रान्ति का आवरण स्वतः उत्पन्न होता है जो कारण की दृष्टि से छिपा कर केवल कार्य का आभास कराता है। जैसे आप किसी बड़े वस्त्र विक्रेता की दुकान में जाकर उससे हजारों प्रकार के सूती कपड़े माँगते जायें और वह आपको बराबर दिखाता जायेगा किन्तु यदि आप उससे कहें कि आपके पास रुई होगी तो वह तुरन्त मना कर देगा और आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि रुई ने ही हजारों प्रकार के कपड़ों का रूप धारण कर उसकी दुकान को भर रखा है। यदि उन कपड़ों में से रुई का अंश निकाल लिया जाये तो कुछ भी शेष नहीं रहेगा। अतः इस उदाहरण में रुई अधिष्ठान रूप कारण है। और सभी कपड़े उसका कार्य हैं और जैसे ही कारण रुई कपड़े रूप कार्य में परिवर्तित हो गई एक ऐसा आवरण भी बुद्धि पर स्वतः पड़ गया जिसने रुई की अनुपस्थिति का आभास करा दिया। दृष्टि से कारण के छिपते ही उपाधि भेद से

कार्य में हजारों विभिन्नतायें प्रदर्शित हो गईं। वह दृश्य जगत भी मायाकृत कार्य है। जिसका कारण रूप अधिष्ठान सच्चिदानन्द परमात्मा है। उस चिद् शक्ति का सानिध्य पाकर त्रिगुणमयी माया ने ही अनन्त विभिन्नता का आभास दर्शाया है। जैसे प्रकाश की किरणों का सानिध्य पाकर दर्पण अपने सामने आने वाले माध्यम के अनुसार विभिन्न प्रकार के रंग बिरंगे आभास प्रदर्शित करता है चित्रपट पर दर्शकों के लिये एक कृत्रिम दुनिया दिखा दी जाती है जो नासमझ बच्चों को सत्य ही लगती है। विभिन्न शक्ति वाले दर्पणों के आभासों की शक्ति और कार्य भी विभिन्न होते हैं। यदि आप सूक्ष्म दृष्टि से विचार करो तो यह भगवान की गुणमयी माया भी विभिन्न शक्ति वाले अन्तःकरण रूपी दर्पणों में चिदानन्द परमात्मा की शक्ति का सानिध्य पाकर अनन्त विभिन्नता का आभास ही दृश्य जगत के रूप में दिखती है। स्वयं जगदात्मा कृष्ण ने गीता में कथन किया है कि—

ईश्वर सर्वभूतानाम् ह्रत्देशे अर्जुन तिष्ठति
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि मायया।।

उपनिषदों के कथनानुसार—**शक्तिद्वयं हि मायायाः विक्षेप शक्ति लिङ्गादिब्रह्माण्डन्तं जगत् सृजेत्। आवरणोत्यपर शक्तिः या संसारस्य कारणम्।**

पंच भूतात्मक दृश्य जगत अनेक लोक लोकान्तर एवं मन, बुद्धि चित्त अहंकार और इन्द्रियाँ आदि का गुणात्मक लिंग शरीर सभी माया की विक्षेपशक्ति का कार्य है। और इस कार्य के अधिष्ठान सच्चिदानन्द शक्ति को छिपाकर केवल आनन्द विभिन्नता का उपाधिमय दृश्य जगत की सत्यता का आभास कराने वाली माया की आवरण शक्ति है। जैसे स्वप्नावस्था में निद्रावरण के कारण से सर्वथा असत्य स्वप्न जगत सत्य प्रतीत होता है उस अवस्था में यदि सर्प काटने आता है या कोई जंगली जानवर आक्रमण करता है अथवा अन्य कोई भयानक घटना घटती है तो बचाव के लिये सभी यथासंभव प्रयत्न किये जाते हैं जो जाग्रत अवस्था में किये जाते और उस स्थिति में यह ज्ञानशून्य हो जाता है कि हम हम तो अपने घर में सकुशल पलंग पर लेटे हुए हैं। जाग्रत अवस्था के दृश्य जगत के ज्ञान की सर्वथा मुलाकात केवल स्वप्न जगत की सत्यता दिखा देना केवल निद्रावरण का ही परिणाम है। और जब तक यह निद्रावरण बना रहता है तब तक स्वप्नज्ञान सत्य है और जाग्रत जगत एवं उसका ज्ञान सत्य हो गया।

बस इसी प्रकार माया की आवरण शक्ति के प्रभाव में यह दृश्य जगत और उसका

ज्ञान सत्य है और इस आवरण के हटते ही यह भी स्वप्नवत् मिथ्या हो जाता है। यही एक उपदेश है **'ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः'** अर्थात् अधिष्ठान रूप ब्रह्म सत्य ही है। मिथ्या उपाधि भेद मायाकृत है। किन्तु ज्ञान का यह उपदेश निरर्थक है। और उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे पलंग पर लेटे हुए का जाग्रत अवस्था का ज्ञान स्वप्नावस्था में पड़े जीव के लिये व्यर्थ है। इस ज्ञान की सार्थकता तो तभी है जब माया की आवरण शक्ति का प्रभाव हट जाए। इसके लिये सभी मार्गियों को योग की शरण में आना होगा। उपनिषदों में यही घोषणा कर दी है कि **'योगहीनं कुतः ज्ञानम्'** ज्ञान मार्ग के प्रवर्तक आदि जगतगुरु शंकराचार्य ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है कि **'न गच्छति विनापानं व्याधिरौषध शब्दतः विनापरोक्षानुभव ब्रह्म शब्दैर्न मुच्यते'** अर्थात् जैसे बिना औषध का पान किये केवल उसका नाम लेने से रोग दूर नहीं होता वैसे ही **अहं ब्रह्मास्मि** आदि महावाक्यों के शब्द ज्ञान से किसी की मुक्ति नहीं होती। जब तक वह योग की निर्जीव असम्प्रज्ञात समाधि में स्थित होकर अपने स्वरूप का साक्षात्कार नहीं कर लेता। तभी तो जगदात्मा भगवान कृष्ण को अपने मुख से कहना पड़ा कि **'जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते'**।

जीव की समस्त दुःखों से क्लेशों से कब मुक्ति होती है। वह कब मोक्ष पद का भागी होता है इसका निरूपण करते हुए अष्टावक्र जी ने कहा है कि **'यदि देह पृथक्कृत चिति विश्रम्य तिष्ठसि अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यसि'** अर्थात् यदि मायाकृत देह से अपने को पृथक करके अपने चिदात्मस्वरूप में स्थित हो जाओ तो अभी सुखी शान्त और माया के सब बन्धनों से मुक्त हो जाओगे किन्तु समस्या है कि देह से पृथक कैसे हुआ जाए? इस समस्या का हल हमें केवल योग में मिलता है।

अब प्रश्न उठता है कि योग क्या है भगवान पतंजलि ने योगश्चित्तवृत्ति सूत्र से योग की परिभाषा की है इस सूत्र का तात्पर्य यह है कि अन्तःकरण में उठने वाली समस्त वृत्तियों पर निरोधात्मक वंशीकार योग है यद्यपि सुषुप्ति अवस्था में भी वृत्तियों का निरोधात्मक वंशीकार नहीं, अपितु बीज रूप में वृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं और जागने पर यह अनुभूति कि खूब सुख से सोया कुछ भी पता नहीं रहा उस अवस्था का वृत्ति जन्यज्ञान है जो भी अनुभव हम मन और इन्द्रियों के द्वारा करते हैं वह सब वृत्ति जन्यज्ञान है अर्थात् वृत्तियां ही तदाकार होकर समस्त ज्ञान कराती हैं और जब तक अन्तःकरण में वृत्तियाँ उठती रहती हैं तब तक कूटस्थ सर्वसाक्षी चिदात्मा वृत्याकार में ही प्रतिबिम्बित होता है और जैसा कि भगवान पतंजलि के सूत्र **'वृत्ति सारूप्य मितरत्र'** से प्रतिपादित है जब योग स्थिति में वृत्ति

निरोध हो जाता है तो चिदात्मा वृत्याकार न होकर अपनी निर्विकार स्वरूप स्थिति में रहता है जैसा कि योग का फल निरूपण करते हुए भगवान पतंजलि ने लिखा है कि **'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** यह वृत्ति निरोधावस्था तीनों जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाओं से सर्वथा भिन्न एक अनुभव गम्य स्थिति है, जिसे परा स्वरूपावस्था से सम्बोधित किया जाता है, उपनिषदों में इन परास्वरूपावस्था का उल्लेख किया गया है कि **सशान्तमवसंकल्प या शिलावद्वस्थितिः जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्ता सा स्वरूप स्थितिः परा।**

संसार का कोई भी प्राणी किसी प्रकार की साधनाएँ करता रहे किन्तु जब तक उसके मन में एकाग्रता का उदय नहीं होता तब तक उसका योग में प्रवेश नहीं माना जाता, क्योंकि वृत्ति निरोध मन की एकाग्रता का ही परिणाम है। मन को एकाग्रतोन्मुखी बनाने के लिए भगवान पतंजलि ने अष्टांग योग का निरूपण किया, इनमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार यह पाँच योग के बहिरंग कहलाते हैं और धारणा, ध्यान, समाधि, यह तीन योग के अन्तरंग कहे जाते हैं इन अंगों का विस्तृत वर्णन भगवान पतंजलि देव ने अपने योग दर्शन में किया है। योग दो भागों में विभाजित किया गया है सम्प्रज्ञात योग और असम्प्रज्ञात योग। धारणा सिद्ध हो जाने पर मन के अन्दर योग में प्रवेश करने की योग्यता आ जाती है तभी अन्तर्मुखी वृत्ति वाला एकाग्रमन सम्प्रज्ञात योग का अधिकारी बनता है। क्रमशः सम्प्रज्ञात योग की चार भूमिकायें हैं। वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत इनका विस्तृत वर्णन करना तो इस लघु लेख में सम्भव नहीं है। संक्षेप में वितर्कानुगत योग में योगी पँच महाभूतो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के स्थूल रूपों का और उनके गुण गन्ध रस, रूप स्पर्श और शब्द का प्रत्यक्ष करता है और तत्सम्बन्धी अनेक दिव्य अनुभव करता है। इसमें भी जब तक ध्याता, ध्यान और ध्येय अलग अलग आसित होते हैं उसे सवितर्क योग और जब तीनों ध्याता, ध्यान और ध्येय ध्येयाकार हो जाते हैं तो उसे निर्वितक योग कहते हैं। निर्वितक योग की पराकाष्ठा में पहुँच जाने पर योगी का मन सूक्ष्म विषयों में प्रवेश करता है और वह पञ्चभूतों के स्थूल रूप की अपेक्षा उनकी सूक्ष्म तन्मात्राओं का और उनके सूक्ष्म गुणों का प्रत्यक्ष होने लगता है। इसे विचारानुगत योग कहते हैं। इसके भी पूर्ववत् सविचार और निर्विचार दो भेद हैं। इस योग में सूक्ष्मविषयों के दिव्य अनुभव होते हैं। सूक्ष्म मन, बुद्धि एवं सूक्ष्म इन्द्रियों तथा अहंकार का प्रत्यक्ष होता है। सदैव सत्य को ग्रहण करने वाली ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। ऋतम्भरा के दृढ़तर अभ्यास करते करते बुद्धि की दर्शन शक्ति और द्रष्टास्वरूप में

एकाकार हो जाती है तो जड़ चेतन ग्रन्थि खुल जाती है। यही अस्मितानुगत योग है। इस योग में ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा अन्य संस्कारों का प्रतिरोध होता जाता है और माया शक्ति के आवरण का आवरण–भंग होता चला जाता है। जिससे सभी दु:खदायी मायिक पदार्थों से पर वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है। दृष्टानुश्रविक विषयों में वितुष्णा होकर पुरुष विवेक ख्याति को प्राप्त करता है। इसकी पराकाष्ठा होने पर योगी असम्प्रज्ञात योग को प्राप्त करता है और अपनी परा स्वरूपस्थिति को पा जाता है।

परा स्वरूपस्थिति को प्राप्त करने के लिए योग में दो उपाय हैं–

1. साधन योग

2. सिद्ध योग

साधन योग तो **'श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्व कमित रेषाम्'** के अनुसार योग की भूमिकाओं को क्रमशः पार करते हुए प्राप्त होता है। और सिद्धयोग महासिद्धपुरुषों की कृपा से प्राप्त होता है। इन सब का रहस्य केवल गुरुदेव के चरणों में रहने से समझ में आता है।

मैं तो कुछ विशेष जानता नहीं हूं। केवल गुरुदेव की आज्ञा से और गुरु चरणों की कृपा पाकर जो कुछ बुद्धि में भाव थे उन्हें लेखनी बद्ध करने का प्रयत्न किया है।

परमात्मा की व्याख्या

कुछ ज्ञानियों ने कहा ''परमात्मा प्रकाश की तरह है।'' कुछ ज्ञानियों ने कहा–''परमात्मा महान अंधकार की भाँति है।'' तुम्हारी पसंद की बात है। तुम अगर थोड़े भयभीत व्यक्ति हो, तो तुम कहोगे–''परमात्मा प्रकाश की भाँति है।'' अगर तुम थोड़े निर्भीक व्यक्ति हो, तो तुम कहोगे–''परमात्मा गहन अंधकार की भाँति है।''

भ्रमर - जप

भ्रमर के गुञ्जारव की तरह गुनगुनाते हुए जो जप होता है वह भ्रमर–जप कहाता है। किसी को यह जप करते देखने–सुनने से इसका अभ्यास जल्दी हो जाता है। इसमें होंठ नहीं हिलते, जीभ हिलाने का भी कोई विशेष कारण नहीं। आँखें झपी रखनी पड़ती हैं। भ्रूमध्य की ओर यह गुञ्जारव होता हुआ अनुभूत होता है। यह जप बड़े ही महत्व का है। इसमें प्राण सूक्ष्म होता है और स्वाभाविक कुम्भक होने लगता है। प्राणगति धीरे–धीमी होती है, पूरक जल्दी होता है और रेचक धीरे–धीरे होने लगता है। पूरक करने पर गुञ्जारव आरम्भ होता है और अभ्यास से एक ही पूरक में अनेक बार मन्त्रावृत्ति हो जाती है। इसमें मन्त्रोचार नहीं करना पड़ता। वंशी के बजने के समान प्राणवायु की सहायता से ध्यानपूर्वक मन्त्रावृत्ति करनी होती है इस जप को करते हुए प्राण–वायु से ह्रस्व–दीर्घ कम्पन हुआ करते हैं और आधार–चक्र से लेकर आज्ञाचक्र तक उनका कार्य अल्पाधिक रूप से क्रमशः होने लगता है। ये सब चक्र इससे जाग उठते हैं शरीर पुलकित होता है। नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु और भ्रूमध्य में उत्तरोत्तर अधिकाधिक कार्य होने लगता है। सबसे अधिक परिणाम भ्रूमध्य भाग में होता है। वहाँ के चक्र के भेदन में इससे बड़ी सहायता मिलती है। मस्तिष्क में भारीपन नहीं रहता। उसकी सब शक्तियाँ जाग उठती हैं। स्मरणशक्ति बढ़ती है प्राक्तन स्मृति जागती है। मस्तक, भालप्रदेश और ललाट में उष्णता बहुत बढ़ती है। प्राक्तन स्मृति जागती है। मस्तक, भालप्रदेश और ललाट में उष्ण बहुत बढ़ती है। तैजस परमाणु अधिक तेजस्वी होते हैं और साधक को आन्तरिक प्रकाश मिलता है। बुद्धि का बल बढ़ता है। मनोवृत्तियाँ मूर्छित हो जाती हैं। नागस्वर बजाने से साँप की जो हालत होती है वही इस गुञ्जारव से मनोवृत्तियों की होती है। उस नाद में मन स्वभाव से ही लीन हो जाता है और तब नादानुसन्धान का जो बड़ा काम है वह सुलभ हो जाता है। *'योगतारावली'* में भगवान् श्री शंकराचार्य कहते हैं कि भगवान् श्रीशंकर ने मनोलय के सवा लाख उपाय बताये, उनमें नादानुसंधान को सबसे श्रेष्ठ बताया। उस अनाहत संगीत को श्रवण करने का प्रयत्न करने के पूर्व भ्रमर–जप सध जाय तो आगे का मार्ग बहुत ही सुगम हो जाता है। चित्त को तुरन्त एकाग्र करने का इससे श्रेष्ठ उपाय और कोई नहीं है। इस जप से साधक को आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है और उसके द्वारा वह स्वपरहित साधन कर सकता है। वह जप प्रपंच और परमार्थ दोनों में काम देता है। शान्त समय में यह जप करना चाहिए। इस जप से यौगिक तन्द्रा बढ़ती जाती है और फिर उससे योगनिद्रा आती है। इस जप के सिद्ध होने से आन्तरिक तेज बहुत बढ़ जाता है और दिव्य–दर्शन होने लगते हैं, दिव्य जगत् प्रत्यक्ष होने लगता है, इष्टदर्शन होते हैं, दृष्टान्त होते हैं और तप का तेज प्राप्त होता है। कविकुलतिलक कालिदास ने जो कहा है–

शमप्रधानेषु तपोधनेषु, गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।

बहुत ही ठीक है– 'शमप्रधान तपस्वियों में (शत्रुओं को) जलाने वाला तेज छिपा हुआ रहता है।'

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

□□□□□□

प्रणवो धनु: शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन बेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।
मुण्डकोपनिषद् 2/4

यहाँ औंकार ही धनुष हैं; आत्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमाद रहित मनुष्य द्वारा ही बींधा जाने योग्य है। अत: उसे भेजकर वाण की तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिये।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा

PRINTPOINT AGRA-9897566803